खंड V

इतिहास लेखन की हिंद-फ़ारसी परम्पराएँ

समय रेखा

ज़ियाउद्दीन बरनी

मुहम्मद क़ासिम फ़रिश्ता

अबुल फ़ज़ल

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

अबुल फ़ज़ल द्वारा अकबर को *अकबरनामा* की प्रस्तुति, *c.* 1603-1605
चित्रकारः गोवर्धन
साभारः चेस्टर बेट्टी लाइब्रेरी
स्रोतः https://upload.wikimedia.org/wikipedia/commons/f/f1/AbulFazlPresentingAkbarnama.jpg

इकाई 12 ज़ियाउद्दीन बरनी*

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 पृष्ठभूमि

12.3 बरनी की रचनाएँ

12.4 इतिहास के संबंध में बरनी की अवधारणा

12.5 बरनी के लेखन में ऐतिहासिक तथ्य/पक्षपात

12.6 बरनी की राजत्व-संबंधी अवधारणा

12.7 बरनी के लेखन में समय तथा कालानुक्रम की अवधारणा

12.8 बरनीः अर्थशास्त्री के रूप में

12.9 बरनी के विचारों में तर्क तथा तार्किकता

12.10 बरनी की उच्च-कुल तथा निम्न-कुल की अवधारणा

12.11 बरनी के लेखन में धर्म तथा इतिहास

12.12 सारांश

12.13 शब्दावली

12.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.15 संदर्भ ग्रंथ

12.16 शैक्षणिक वीडियो

12.0 उद्देश्य

यह इकाई इतिहासकार के रूप में ज़ियाउद्दीन बरनी और उसके इतिहास-संबंधी 'विचार' तथा इतिहास लेखन पर केंद्रित है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समर्थ होंगेः

- उस पृष्ठभूमि को समझने में जिसने बरनी के ऐतिहासिक लेखन को प्रभावित किया,
- ज़िया बरनी द्वारा रचित प्रमुख कृतियों को जानने में,
- बरनी के इतिहास-संबंधी विचार को समझने में,
- बरनी के व्यक्तिगत पक्षपात तथा वस्तुनिष्ठता को जानने में,
- बरनी के राजत्व के विचार को रेखांकित करने में,
- बरनी के लेखन में निहित समय की अवधारणा का परीक्षण करने में,
- तार्किक विज्ञानों और दर्शन के संबंध में बरनी के मत का विश्लेषण करने में,
- बरनी के उच्च-कुल-निम्न-कुल की अवधारणा को समझने में, और
- धर्म तथा इतिहास के संबंध में बरनी के मत पर विचार करने में।

12.1 प्रस्तावना

हमने सल्तनत काल के दौरान इतिहास लेखन की प्रवृत्ति के विश्लेषण के लिए ज़ियाउद्दीन बरनी को चुना है, न केवल इसलिए कि वह एक महान् विद्वान और सफल लेखक था, बल्कि इतिहास के संबंध

* प्रो. आभा सिंह, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

में उसकी समझ के आधार पर। वह सम्भवतः सल्तनत कालीन इतिहासकारों में प्रथम था जो चर्चा करता है कि इतिहास क्या है? ऐतिहासिक विवरणों को कलमबद्ध करने में इतिहासकार का क्या कर्तव्य है? यूरोपीय इतिहासलेखन के इस सामान्य दावे के विपरीत कि यहाँ ऐतिहासिक चेतना का पूर्ण रूप से अभाव था, यह बरनी था जो वास्तव में इस विषय पर लिखता और चिंतन करता है कि 'इतिहास क्या है'? और 'एक इतिहासकार का शिल्प क्या है?'अपनी *तारीख़-ए फ़िरोज़शाही* की प्रस्तावना में उसने इस विषय पर एक लंबा उद्धरण प्रस्तुत किया है।

बरनी की रचनाओं में सघन रूप से तत्कालीन 'राजनीतिक-सांस्कृतिक परिवेश' की झलक मिलती है। पक्षपात तथा पूर्वाग्रह, विशेष रूप से उच्च कुलीनों के प्रति उसके पक्षपातपूर्ण पूर्वाग्रह, बरनी के इतिहास लेखन में एक प्रमुख तत्व के रूप में उभरता है। इसके अतिरिक्त बरनी के लेखन में 'निरपेक्ष वस्तुनिष्ठता' को ढूँढ पाना मुश्किल है। बरनी घटनाओं की व्याख्या करते समय अपने समय के परिवेश से अत्यधिक प्रभावित नज़र आता है। समकालीन सामाजिक यथार्थ तथा उसके निजी पूर्वाग्रहों का प्रभाव इतना मज़बूत है कि अक्सर दो विभिन्न कालों के एक जैसे विचारों और घटनाओं की व्याख्या एक-दूसरे का प्रतिबिंब प्रतीत होती हैं। घटनाओं की, की गई उसकी प्रत्येक व्याख्या समकालीन राजनीतिक-सामाजिक परिवेश के अनुरूप है। व्याख्याओं को अक्सर सामान्यीकरण के साथ जोड़ दिया गया है। तथापि, 'कार्य-कारण' का संबंध बरनी के लेखन में काफ़ी विशिष्ट स्थान रखता है।

बरनी के लेखन में ऐतिहासिक चेतना मुख्यतः राज्य के ढाँचे की जटिलताओं के आसपास बुनी गई थी। अतः, इसमें आपको राजतंत्र, राजा के कर्तव्यों, बल प्रयोग तथा हिंसा की भूमिका, उच्च कुल के विचार पर दिया गया बल, इत्यादि देखने को मिलेगा। बरनी का लेखन न केवल इस पर प्रकाश डालता है कि उसने अतीत को किस प्रकार देखा, बल्कि इसके साथ ही यह भी प्रस्तुत करने का प्रयास करता है कि राज्य या राजतंत्र को किस प्रकार कार्य करना चाहिए। यह दोनों विचार बरनी की *फ़तावा* और *तारीख़* में इस सीमा तक घुल-मिल गए हैं कि यह देख पाना मुश्किल है कि किस विचार ने किसको प्रभावित किया है। इस प्रकार इन दोनों को परस्पर संयुक्त रूप से पढ़ा और व्याख्यायित किया जाना चाहिए, इसको ध्यान में रखते हुए कि बरनी क्या प्रस्तुत करना चाह रहा था और वास्तव में क्या घटित हो रहा था, जिसका बरनी अक्सर ही एक मूक दर्शक मात्र था। तथापि, बरनी अपने आदर्शवाद को राजनीतिक व्यवहारिकता के अनुरूप भी ढालता है। पीटर हार्डी बरनी के लेखन की दो महत्वपूर्ण विशेषताओं की ओर संकेत करते हैं: क) बरनी *फ़तावा* में व्यक्त अपने विचारों को *तारीख़* के ऐतिहासिक चरित्रों के संवादों में डालता है; और ख) वह सुल्तान फ़िरोज़ की एक सच्चे मुस्लिम और 'दिल्ली के सर्वश्रेष्ठ सुल्तान' के रूप में प्रशंसा करता है।

12.2 पृष्ठभूमि

बरनी को दिल्ली के आठ सुल्तानों, ग़ियासुद्दीन बलबन (1266-1286) से फ़िरोज़ शाह तुग़लक़ (1351-1388) तक के दौर में जीने का सौभाग्य मिला था। तथापि, बरनी ने विरोधाभासी जीवनों को जीया था। एक ओर तो, उसे मुहम्मद बिन तुग़लक़ का संरक्षण प्राप्त हुआ और उसने संतुष्टिपूर्ण जीवन का स्वाद चखा था; और दूसरी ओर इसके विपरीत उसकी मृत्यु घनघोर ग़रीबी और कुंठाओं के बीच हुई थी।

बरनी (1285-1358) बरन (आधुनिक बुलंदशहर, जिससे उसका उपनाम 'बरनी' पड़ा) से संबंध रखने वाले विद्वानों तथा ओहदेदारों के एक सम्मानित परिवार से संबंध रखता था। मुईद-उल मुल्क, बरनी के पिता, ने *सिपहसालार* हुसामुद्दीन (जो बाद में ***वकील-ए दर*** और तदंतर सुल्तान बलबन के ***हाजिब*** के महत्वपूर्ण पद तक पहुँचा) की पुत्री से विवाह किया था। मुईद-उल मुल्क स्वयं शाहज़ादे अर्कली ख़ान (जलालुद्दीन ख़ान के पुत्र) के *नायब* के पद पर प्रतिष्ठित हुआ था। अलाउद्दीन ख़लजी के अधीन वह बरन का *नायब-ओ ख़्वाजा* था। बरनी का चाचा आईन-उल मुल्क कड़ा और अवध के *मुक़्ता* के पद पर था और बाद में अलाउद्दीन ख़लजी के शासन के दौरान दिल्ली का *कोतवाल* बना।

बरनी ने स्वयं अरबी और फ़ारसी में अच्छी शिक्षा पाई थी। वह धर्म-विद्या तथा इस्लामी धर्मशास्त्र में विशेषज्ञता रखता था। उसमें इतिहास का गहरा बोध और समझ थी। बरनी एक विचारशील व्यक्तित्व का मालिक था। उसकी विद्वान-कवि रचनाकार अमीर खुसरो तथा **अमीर हसन सिज्ज़ी** के साथ घनिष्ठ निकटता थी। उसे प्रसिद्ध चिश्ती संत निज़ामुद्दीन औलिया का प्रेमपूर्ण अनुग्रह भी प्राप्त था।

निज़ामुद्दीन औलिया की दरग़ाह के पास, उसी परिसर में अपने पिता की कब्र के निकट दफ़नाए जाने का उसे सम्मान प्राप्त हुआ। उसे मुहम्मद बिन तुग़लक़ के दरबार में अत्यधिक सम्मान प्राप्त था। **अमीर खुर्द,** उसका एक युवा समकालीन, यह टिप्पणी करता है कि वह एक परिष्कृत मस्तिष्क और दरबारी संस्कृति में अप्रतिम् प्रतिभा वाला व्यक्ति था। अमीर खुर्द उसकी प्रशंसा एक महान् वार्ताकार के रूप में भी करता है।

बरनी काफ़ी परिपक्व उम्र में शाही सेवा में 1334-1335 (मुहम्मद बिन तुग़लक़ के राज्य काल के दसवें वर्ष में, अपनी 50 साल की परिपक्व आयु में) में ही मुहम्मद बिन तुग़लक़ के काल में एक दरबारी सलाहकार के रूप में (*नदीम* अर्थात विश्वासपात्र) शामिल हो सका था और उसने मुहम्मद बिन तुग़लक़ की सत्रह वर्ष तक के लंबे समय तक सेवा की। लेकिन, फ़िरोज़ के राज्यारोहण के साथ उसके भाग्य का सितारा धुंधला पड़ गया। न केवल उसे भटनेर के किले में बंदी बना दिया गया था बल्कि वह मुश्किल से ही अपने प्राणों की रक्षा कर सका था और इस प्रकार उसने अपनी मृत्यु तक नितांत वित्तीय मुश्किलों और कुंठा के साथ जीवन-यापन किया। बरनी ने उत्साहपूर्वक फ़िरोज़ शाह का ध्यान आकर्षित करने की कोशिश की, उसने अपने मन में इसी इरादे को रखते हुए *तारीख़-ए फिरोज़शाही* और *अखबार-उल बरमाकियान* को सुल्तान फ़िरोज़ को अर्पित किया था। और, *बरमकियान* में सुल्तान फ़िरोज़ की उदारता की प्रशंसा भी की, लेकिन अपने उद्देश्य में वह बुरी तरह से असफल रहा। यहाँ तक कि इस ग्रंथ को स्वयं फ़िरोज़ के सम्मुख प्रस्तुत होकर उसे भेंट करने की उसकी इच्छा तक साकार नहीं हो सकी। इस गुमनामी के दौर में ही उसने अपना अधिकांश साहित्य रचा था।

बरनी के लेखन को एक उचित परिप्रेक्ष्य में रखने के लिए हमें उसकी पृष्ठभूमि के सापेक्ष रखकर उसका विश्लेषण करना होगा। बरनी एक विद्वान धर्मशास्त्री था और फ़ारसी इस्लामी संस्कृति में गहन रूप से प्रशिक्षित और रचा-बसा था। उसके लेखन का समस्त भंडार उसके इस प्रशिक्षण को ज़ाहिर करता है। और उसकी कृतियों की व्याख्या इस रोशनी में ही की जानी चाहिए। अन्य महत्वपूर्ण कारक था, मुहम्मद बिन तुग़लक़ के शासनकाल में उसे प्राप्त प्रतिष्ठा तथा कुलीनों के साथ उसके घनिष्ठ संबंध और उसी तरह फ़िरोज़ के साथ उसके कटु संबंध। इसके अतिरिक्त, एक सलाहकार के रूप में उसने राजनीतिक-प्रशासनिक विकासक्रमों को दिन-प्रतिदिन के आधार पर निकटता से देखा था।

बरनी की *तारीख़* का अन्य महत्वपूर्ण पहलू यह है कि उसने जब एक बार अपनी *तारीख़* को पूरा कर लिया (फ़िरोज़ के शासनकाल के पाँचवे वर्ष में) तो बरनी को शाही अनुकंपा प्राप्त करना तो दूर, इसके बजाय उसे आलोचना ही प्राप्त हुई। तदनंतर, उसने दो वर्ष पश्चात् अपने ग्रंथ को संशोधित किया और फ़िरोज़ शाह के शासनकाल के पहले छः वर्षों का तुलनात्मक रूप से एक व्यापक वृत्तांत प्रस्तुत किया। इन दोनों संस्करणों की तुलना करना काफ़ी दिलचस्प रहेगा क्योंकि बाद के संस्करण में उसने कुछ घटनाओं को सार रूप में प्रस्तुत किया और कुछ अन्य को विस्तार के साथ वर्णित किया है। और, कभी-कभी उसके द्वारा दी गई व्याख्या और किसी बिंदु को दी गई महत्ता भी भिन्नता रखती है। पहले संस्करण में मुहम्मद बिन तुग़लक़ को बरनी द्वारा सकारात्मक दृष्टिकोण में दर्शाया गया है, तो दूसरे संस्करण में, बदली हुई परिस्थितियों और विपरीत हालात में बरनी का प्रशंसात्मक लहज़ा कुछ दब सा जाता है। अलाउद्दीन के बाज़ार नियंत्रण के उपाय पहले संस्करण में अत्यंत संक्षेप में प्रस्तुत किए गए हैं जो दूसरे संस्करण में विस्तार के साथ वर्णित हैं। पहले संस्करण में दिल्ली के साहित्यिक परिवेश और मुहम्मद बिन तुग़लक़ द्वारा अपने काल में साहित्यिक संस्कृति को दिए गए संरक्षण की पर्याप्त चर्चा है; साथ ही मुहम्मद बिन तुग़लक़ द्वारा राजधानी का स्थानांतरण पहले संस्करण में गायब नज़र आता है तो दूसरे संस्करण में इसकी विस्तार से चर्चा की गई है। इस सबसे यह संकेत मिलता है कि बरनी के लेखन, विशेषकर उसकी *तारीख़* के दो संस्करणों के बीच तुलना, से पता चलता है कि किस प्रकार यह इतिहासकार अपने ग्रंथ के लेखन में स्वयं की परिस्थितियों से प्रभावित था। साथ ही, बरनी द्वारा 'सत्य' को प्रस्तुत करने के दावे के बावजूद, चूंकि विचार स्थायी नहीं होते हैं, अतः बरनी की पक्षपातपूर्ण दृष्टि ने उनके लेखन को प्रभावित किया।

12.3 बरनी की रचनाएँ

बरनी ने अपने लेखन-कार्य को 69 वर्ष की वरिष्ठ आयु में शुरू किया और इसके बाद नौ ग्रंथों की रचना की। उसने सचेत रूप से 'चिरकालिक लोक स्मृति' के अलावा 'कुलीन व उच्च कुल से संबंध

रखने वालों', साथ ही पुस्तक कारोबार के लिए भी लिखा। बरनी ने कई प्रकार की कृतियों की रचना की। उसका *साहीफ़ा-ए नात-ए मुहम्मदी* या *सना-ए मुहम्मदी* विशुद्ध रूप से एक धार्मिक ग्रंथ था, जिसे उसने 70 वर्ष की आयु में 1353-54 में कलमबद्ध किया था। उसकी रचना *हसरतनामा* एक सूफ़ी लेखन-कार्य था, जिसमें शेख निज़ामुद्दीन के संस्मरण भी शामिल हैं, लेकिन यह ग्रंथ अब केवल सार रूप में रूप में मौजूद है, अमीर खुर्द के संकलन *सियार-उल औलिया* में। उसने किताबों के बाज़ार को ध्यान में रखते हुए *तारीख-ए बरमका,* वज़ीरों के बरमाक परिवार के भाग्य का इतिहास, जिन्हें ख़लीफ़ा हारून-अल रशीद ने गुमनामी में धकेल दिया था, की रचना की। अमीर ख़ुर्द उसकी अन्य रचनाओं में *सलात-ए कबीर, इनायतनामा-ए इलाही* तथा *मआसिर-ए सादत* का भी उल्लेख करता है, जो बाद के काल में उपलब्ध नहीं रह गई थीं।

उसकी रचनाओं में इतिहास के विद्यार्थियों के लिए दो अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, *तारीख़-ए फ़िरोजशाही* (1357) और *फ़तावा-ए जहाँदारी* (संभवतः *तारीख़* के बाद और *तारीख़* के उपसंहार के रूप में लिखा गया एक संकलन[1])। जहाँ *फ़तावा* (शब्दशः विचार/सलाह) शासन की कला से संबंध रखती है और अरबी *मिरर ऑफ़ प्रिंसेस* की शैली में रचित है और ग़ज़नी के सुल्तान महमूद द्वारा अपने पुत्रों को और सत्ताधारी शासकों के लिए सलाह के रूप में लिखी गई है। वहीं *तारीख़* विशुद्ध रूप से बलबन के प्रारंभिक वर्षों से लेकर फ़िरोज़ शाह तुग़लक़ के शासनकाल तक के 95 वर्षों की ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण है, 'यह ईश्वर से भय रखने वाले मुस्लिम शासकों के लिए निर्देशों के एक सार-संग्रह की तरह था' (हार्डी 1960: 39)।

बोध प्रश्न-1

1) किस प्रकार बरनी की *तारीख-ए फ़िरोज़शाही* का प्रथम संस्करण दूसरे संस्करण से भिन्न था?

....

....

....

2) निम्नलिखित में से कौन सी किताबों को बरनी ने किताबों के बाज़ार को ध्यान में रखते हुए लिखा था?

   क) *तारीख़-ए फ़िरोज़शाही*

   ख) *तारीख़-ए बरमका*

   ग) *हसरतनामा*

   घ) *फ़तावा-ए जहाँदारी*

3) निम्नलिखित में से किस किताब में निज़ामुद्दीन औलिया के संस्मरण भी संकलित हैं?

   क) *हसरतनामा*

   ख) *साहिफ़ा-ए नात-ए मुहम्मदी*

   ग) *सलात-ए कबीर*

   घ) *इनायतनामा-ए इलाही*

12.4 इतिहास के संबंध में बरनी की अवधारणा

बरनी में इतिहास का गहरा बोध था। बरनी स्पष्ट रूप से बताता है कि इतिहास से क्या सबक सीखने को मिलते हैं और इतिहास से कोई क्या शिक्षा ग्रहण कर सकता है। वह तर्क देता है कि अतीत की घटनाओं का भविष्य की गतिविधियों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। उसने टिप्पणी की है कि बलबन द्वारा

[1] इरफ़ान हबीब (1998: 24) का मत है कि इसकी रचना निष्कर्ष के रूप में *तारीख़* के बाद हुई थी। लेकिन, आई. एच., सिद्दीकी (2014: 206) का मानना है कि इसकी स्वतंत्र शैली संकेत करती है कि इसकी रचना फ़िरोज़ शाह तुग़लक़ के शासनकाल से पहले हुई थी।

अपनी सत्ता को सुदृढ़ करने के लिए अपनाई गई लौह और रक्त की नीति का परिणाम 17 वर्षों के भीतर ही उसके वंश के विनाश के रूप में निकला।

बरनी अपने समय का एक सच्चा इतिहासकार था। वह अपनी *तारीख़* में निरंतरता और परिवर्तनों की चर्चा करता है। एक इतिहासकार के क्या कर्तव्य हैं? वह इतिहासकार के शिल्प की बात करता है। उसके लिए इतिहासकार का शिल्प एक कवि और कथा-लेखक से भिन्न होता है। बरनी ने अपने प्रथम अध्याय (*मुक़द्दिमा*) को पहले और दूसरे संस्करण में बदला नहीं है, यहाँ हम उसे एक श्रेष्ठ विचारक, एक दार्शनिक, एक विचारवान प्राणी और एक आलोचनात्मक इतिहासकार के रूप में देखते हैं। वह इस पर विचार करता है कि इतिहास लेखन की प्रविधि और इसके उद्देश्य क्या हैं? वह इस पर बल देता है कि एक इतिहासकार को राजाओं और अमीरों के दुष्टतापूर्ण कृत्यों को छुपाना नहीं चाहिए और न ही ऐतिहासिक वृत्तांत लिखते समय चापलूसी का अनुसरण करना चाहिए। बरनी की एक सच्चे इतिहासकार के रूप में तारीफ़ करते हुए मोहम्मद हबीब (2016: 316) कहते हैं, 'बरनी के लिए इतिहास एक दस्तावेज़ या एक इतिवृत्त या एक *तारीख़* नहीं है बल्कि यह सुपरिभाषित रूप से एक विज्ञान है – सामाजिक व्यवस्था का विज्ञान – और इसका आधार धर्म या परम्परा नहीं बल्कि पर्यवेक्षण तथा अनुभव है।' इतिहासकार के रूप में बरनी की तारीफ़ करते हुए पीटर हार्डी (1960: 20) बरनी की *तारीख़* का 'चैतन्य दर्शन की एक सशक्त तथा प्रखर अभिव्यक्ति के रूप में वर्णन करते हैं जो बरनी को महज़ तारीख़ों और इतिवृत्तों के लेखकों या रचनाकारों की श्रेणी से ऊपर उठा देता है।'

बरनी उस युग में रह रहा था जब इस्लामी दुनिया में इतिहास-संबंधी विचार उभरना शुरू हुए थे, विशेष रूप से **ज़ायद अल-बैहाक़ी** (1097-1169,) मुहम्मद-इब्न इब्राहिम अल-इजी (मृ. 1381-1382) तथा शम्स अल-दीन सख़ावी (1427-1497) का उल्लेख किया जा सकता है, जिन्होंने विस्तार से इतिहास के उपयोग के संबंध में चर्चा की है। अपनी *तारीख़-ए फ़िरोज़शाही* की प्रस्तावना में बरनी ने एक संपूर्ण खंड (इतिहास के ज्ञान; *इल्म-ए तारीख़*) को समर्पित किया है।

बरनी इतिहास के ज्ञान (*इल्म-ए तारीख़*) को हस्तांतरणीय ज्ञान (*अल-उलूम अल-नक़लिया; मनकूलात*) की श्रेणी में रखता है, वह *मनकूलात* को *माकुलात* (*अक़्ल* पर आधारित ज्ञान, *अल-उलूम अल-अक़लिया;* ज्ञान की तार्किक पद्धतियाँ – गणित चिकित्सा, दर्शन, तर्कशास्त्र और खगोल विद्या) के ऊपर तरज़ीह देता है। उसका तर्क है कि 'दुनिया के मामलों को *अक़्ल* के माध्यम से नहीं जाना जा सकता है।' इसका परिणाम 'सच्चे ईमान तथा धार्मिक समुदाय पर संदेह में निकलता है' (ऑवर 2015: 216-217)। इतिहास, बरनी के लिए, गहन रूप से *मनकूलात* के साथ जुड़ा हुआ था। बरनी इतिहास के संबंध में अपने विचारों के निर्माण में इस प्रकार मुख्यतः *कुरान*-संबंधी ज्ञान (*तफसीर*), *हदीस* (पैगंबर के वचन और कृत्य), इस्लामी क़ानून (*फ़िक़्ह*) और शेख़ों के तरीकों (*तरीक़त -ए मशायख़*) पर निर्भर रहा है। उसके लिए इतिहास का ज्ञान और *हदीस* समरूपी हैं। इस संदर्भ में विशेष रूप से महत्वपूर्ण था, जैसा कि बरनी तर्क देता है, विवरणकारों की श्रृंखला (*इसनाद*) द्वारा प्रस्तुत आलोचना/प्रशंसा और किन परिस्थितियों में किसी विशेष *हदीस* का बखान किया गया था, उसकी सत्यता को स्थापित करने की प्रक्रिया में ये सभी तत्व इतिहास का भी उतना ही हिस्सा थे। बरनी के अनुसार, 'सारभूत रूप से यह इतिहास का ज्ञान ही है जो मुस्लिमों को पैगंबर तथा उनके साथियों के कृत्यों को समझने में समर्थ बनाता है' (ऑवर 2015: 213)। बरनी के लिए इतिहास प्रथमतः लाभकारी था क्योंकि यह मुख्यतः पैगंबरों (*अनबिया*) और सुल्तानों (*सलातीन*) से लाभ पाने का ज़रिया था जिनके कृत्यों को स्वर्ग की पुस्तकों में दर्ज किया गया था ...'। 'बरनी *कुरान* को एक ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में परिभाषित करता है, और वस्तुतः *कुरान* ने इस्लामिक इतिहास लेखन के विकास में केंद्रीय भूमिका निभायी थी' (ऑवर 2015: 212)। 'उसके लिए, ''अंकिंचनों के अनुभव संपत्ति धारण करने वालों के लिए एक सबक होते हैं, धूर्त लोगों के बुरे चरित्र तथा दुष्टतापूर्ण व्यवहार को नकारने से अच्छा आचरण रखने वाले ईश्वर की अनुकंपा का संरक्षण पाते हैं''' (ऑवर 2015: 212-213)। पीटर हार्डी का विश्वास है, 'बरनी इतिहास का व्यवहार धर्म-विद्या की एक शाखा के रूप में करता है'। हार्डी के तर्कों को खारिज करते हुए निज़ामी कहते हैं कि, 'जिस कारण बरनी इतिहास के अध्ययन को *हदीस* के अध्ययन के समकक्ष रखता है वह *हदीस* के धर्मशास्त्रीय तत्व नहीं है बल्कि *उसूल-ए असनाद* ... *हदीस* के विद्वानों द्वारा विकसित आलोचनात्मक सिद्धांत हैं।' सिद्दीक़ी इस ओर ध्यान दिलाते हैं कि अपनी *फ़तावा* और *तारीख़* के प्रथम संस्करण में बरनी मुश्किल से ही एक उपदेश देने वाले इतिहासकार के रूप में नज़र आता है, इसके बजाय उसका धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण प्रत्यक्षतः प्रकट होता है। उसने जो *फ़तावा* में लिखा

है वह फ़िरोज़ के काल में लिखना मुश्किल था, जब मुस्लिम रूढ़ीवादी तत्व प्रभावशाली बन चुके थे। इस प्रकार इतिहासकार के रूप में बरनी अपनी *तारीख़* के प्रथम संस्करण में जो पक्ष लेता है दूसरे संस्करण में परिस्थितियों ने उसे उन आधारभूत सिद्धांतों से विचलित होने पर मजबूर कर दिया था जिनका उसने पक्ष लिया था।

बरनी यह भी विश्वास करता है कि इतिहास नैतिक और आचारशास्त्रीय सबक सिखाता है। बरनी के लिए 'इतिहास का ज्ञान *अक़्ल* की प्रचुरता, विवेक (*शुऊर*), निजी *राय* और चीज़ों को व्यवस्थित करने (*तदबीर*) में योगदान देता है। बरनी के अनुसार इतिहास के ज्ञान से कोई व्यक्ति दूसरों के अनुभव से स्वयं के अनुभव को समृद्ध बनाता है। दूसरों के दुर्भाग्य को समझते हुए वह सजग बना रहता है' (ऑवर, 2015: 214)।

बरनी इतिहास की सलाहकारी भूमिका की भी प्रशंसा करता है। बरनी के अनुसार यह सुल्तानों को भविष्य की चुनौतियों से स्वयं को सुरक्षित बनाने में मार्ग-निर्देशन करता है, अतीत की घटनाओं से सबक लेते हुए। इतिहास परिस्थितियों को 'स्वीकारना' और 'धैर्य' रखना सिखाता है। बरनी के लिए इतिहास आने वाली पीढ़ियों के लिए एक 'परामर्शकारी साहित्य' के रूप में कार्य करता है। बरनी तर्क देता है कि, 'इतिहास उन्हें (राजा, मंत्रियों, और इस्लाम के सुल्तानों को) दुनिया के मामलों में अच्छे आचरण के अच्छे परिणाम और बुराई के दुष्परिणाम दिखाता है। इस प्रकार सुल्तान और शासकों को अच्छे कर्म करने की प्रेरणा मिलती है, न कि अत्याचार और शोषण करने की ....' (हार्डी 1960: 23)। हार्डी (1960: 39) का तर्क है कि 'बरनी के लिए इतिहास का अध्ययन विशुद्ध रूप से मानव अतीत का अध्ययन नहीं है; बरनी मानव की कथा की विशिष्टताओं और अनोखेपन में दिलचस्पी नहीं रखता है, वह अतीत को अच्छाई और बुराई के बीच युद्धक्षेत्र के रूप में देखता है। बरनी इतिहास का व्यवहार धर्म-विद्या की एक शाखा के रूप में करता है ... इतिहास के तथ्य वे हैं जिन्हें विश्वसनीय धार्मिक लोगों ने इस रूप में स्वीकार किया है'।

बरनी के लिए इतिहास लेखन का मुख्य घटक 'सत्य' और 'विश्वास' है। वह टिप्पणी करता है, 'जो कुछ भी इतिहासकार ग़लत इरादे से लिखता है, क़यामत के दिन यह उसके लिए गंभीर सज़ा का कारण बनेगा'। बरनी यह तर्क देता है कि किसी काल के इतिहास को कलमबद्ध करते हुए सत्य का वर्णन बिना किसी भय या पक्षपात के करना चाहिए। बरनी स्वीकारता है, 'जो भी मैंने लिखा है, सत्यता और ईमानदारी से लिखा है और यह *तारीख़* विश्वास करने योग्य है' (ऑवर, 2015: 215)। पीटर हार्डी (1957: 317) का कथन है, 'इस इतिहासकार का ''इतिहास-दर्शन'', उसका यह मत कि धार्मिक रूढ़िवादिता इतिहासकार की सत्यता को सुनिश्चित करती है, संकेत करता है कि बरनी की सत्य की अवधारणा धार्मिक तथा आचारशास्त्रीय है, न कि ऐतिहासिक।'

बरनी यह विचार प्रकट करता है कि इतिहास हमें सबक़ सिखाता है। विशेषकर अपनी *तारीख़-ए बरमका* के माध्यम से उसने यह बताया है कि सुल्तानों को पुराने स्थापित ख़ानदानों को तबाह नहीं करना चाहिए क्योंकि नए लोग सुल्तान की लोकप्रियता को वैसे ही प्रभावित करेंगे जैसे ख़लीफ़ा हारुन-अल रशीद के साथ हुआ था।

बोध प्रश्न-2

1) इतिहास के संबंध में बरनी की क्या अवधारणा है?

....

....

....

2) क्या आप पीटर हार्डी के इस मत से सहमत हैं कि 'बरनी इतिहास को धर्मशास्त्र (theology) की एक शाखा के रूप में देखता है'?

....

....

....

12.5 बरनी के लेखन में ऐतिहासिक तथ्य/पक्षपात

मोहम्मद हबीब टिप्पणी करते हैं कि बरनी की *तारीख़* में 'गंभीर ख़ामियाँ भी हैं; कुछ बेहद महत्वपूर्ण मामलों में उसने बाद के प्रत्येक इतिहासकार को गुमराह किया है, और फिर भी मध्यकालीन भारत में ऐसा दूसरा फ़ारसी इतिहास खोज पाना मुश्किल है जिसे उसके समकक्ष रखा जा सके' (हबीब 2016: 316)। इस ख़ामी का, हबीब टिप्पणी करते हैं, मुख्य कारण यह था कि बरनी प्राथमिक तौर पर अपने पर्यवेक्षण तथा अनुभव के आधार पर लिख रहा था, बजाय कि किसी सरकारी अभिलेखों के संग्रह या इस इरादे से दर्ज किए गए दस्तावेज़ों पर निर्भर रहने के। मोहम्मद हबीब (2016: 319) तर्क देते हैं कि बरनी के पास अपनी *तारीख़* की रचना करते समय कुछ नहीं था, सिवाय उसकी स्मृति, क़लम, स्याही और काग़ज़ के।

बरनी भारत पर **तरमाशिरीन** के आक्रमण का उल्लेख करना भूल जाता है। मोहम्मद हबीब का यह तर्क है कि बरनी द्वारा दिए गए मुहम्मद बिन तुग़लक़ की सांकेतिक मुद्रा के संक्षिप्त और ग़लत वर्णन ने इस क़दर ग़लतफ़हमी पैदा की कि इसका परिणाम उसे एक 'नितांत पागल' समझे जाने में निकला।

बरनी की *फ़तावा-ए जहाँदारी* का उद्देश्य मुस्लिम सुल्तानों या दिल्ली के सुल्तानों को इस्लाम के प्रति कर्तव्यों का निर्देश देना था, जिसे महमूद ग़ज़नी द्वारा अपने पुत्रों तथा इस्लाम के सुल्तानों को प्रस्तुत परामर्श के रूप में लिखा गया था। बरनी ने *फ़तावा* में सैद्धांतिक स्तर पर जो लिखा है और व्यवहारिक स्तर पर *तारीख़* में जो चित्रित किया गया है, उसके बीच लहज़े की समानता को लेकर बरनी की तीव्र आलोचना की गई है कि क्या बरनी के लेखन में उस काल की वास्तविक घटनाओं का प्रतिचित्रण हुआ है या बरनी ने मात्र अपने विचारों को ऐतिहासिक पात्रों की अभिव्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। सैयद हसन (1938: 96) यह टिप्पणी करते हैं कि 'विभिन्न चरित्रों के नाम पर दिए गए ये बहुत से उपदेश काल्पनिक प्रतीत होते हैं ...'। ए. बी. एम. हबीबुल्लाह (1941) इसी प्रकार के सरोकारों को प्रतिध्वनित करते हैं: 'यह लेखक के स्वयं का दिमाग़ है जिसे इस पुस्तक में प्रक्षेपित (projected) किया गया है न कि वास्तविक अतीत को'। पीटर हार्डी (1957: 21) भी यही मत रखते हैं कि 'बरनी ने अपने विचारों को *तारीख-ए फ़िरोज़शाही* के पात्रों की अभिव्यक्ति के रूप में चित्रित किया है'। हार्डी मुहम्मद बिन तुग़लक़ के साथ बरनी के दो संवादों को उद्धृत करते हैं, इनमें से एक का संबंध सुल्तानों को मृत्युदंड की अनुमति है या नहीं इससे सरोकार रखता है और *फ़तावा* और *तारीख़* दोनों में वह इस पर बल देता है कि इसकी अनुमति नहीं है। एक दूसरे संवाद में बरनी प्रजा द्वारा अपने सुल्तान पर विश्वास खो देने की पहचान एक गंभीर बीमारी के रूप में करता है, अपनी *फ़तावा* में भी उसने उस शासक की निंदा की है जो आतंक का रास्ता अपनाता है। इन दोनों संवादों में यद्यपि मुहम्मद बिन तुग़लक़ उसके साथ असहमति जताता है और तलवार और दंड के रास्ते का अनुसरण करने का निर्णय लेता है। हार्डी यह तर्क देते हैं कि यह विचार कि एक सच्चे मुस्लिम सुल्तान को उन नवाचारों को निरुत्साहित करना चाहिए जो मुख्यतः दार्शनिकों द्वारा प्रचारित किए जाते हैं और निम्न कुलों में पैदा हुए लोगों (वह ग़ैर-तुर्कों को ऊँचे ओहदों पर नियुक्त करने का विरोधी था) तथा भ्रष्ट धर्मों के लोगों (*काफिरों*) को उच्च पदों पर आसीन नहीं करना चाहिए। यह चिंता समान रूप से *फ़तावा* और *तारीख़*, दोनों, में नज़र आती है। इसी प्रकार पीटर हार्डी का यह भी तर्क है कि अध्याय सात में बलबन के जिन विचारों पर प्रकाश डाला गया है वे उसके स्वयं के हैं न कि बलबन के।

लेकिन यदि यह स्वीकार किया जाए कि *फ़तावा, तारीख़* के बाद लिखी गई एक कृति है तब यह अनुमान लगाया जा सकता है कि बरनी ने *फ़तावा* की रचना सुल्तान और भविष्य की पीढ़ियों के लिए एक परामर्श-ग्रंथ के रूप में की कि एक आदर्श और सफल मुस्लिम सुल्तान को किस तरह होना चाहिए, जो उसके द्वारा प्राप्त किए गए उन आठ सुल्तानों के शासनकालों, जिन्हें उसने देखा था, के अनुभवों पर आधारित था।

फ़िरोज़ की अनुकंपा प्राप्त करने की इच्छा का परिणाम बरनी की व्याख्याओं में कई प्रकार के बदलावों और पक्षपातों में निकला, विशेषकर जब कोई बरनी की *तारीख़* के प्रथम और द्वितीय संस्करण की तुलना करता है। पहले संस्करण में वह एक ऐसे व्यक्ति के रूप में लिख रहा था जिसने सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक़ की विशेष कृपा का उपभोग किया था, वहीं दूसरे या अंतिम संस्करण में उसने तब सत्ताधारी रहे सुल्तान फ़िरोज़ को संतुष्ट करने के लिए उपमानों का समावेश और तर्कों को संशोधित

किया, इसके कारण उसके दृष्टिकोण में अत्यधिक पक्षपातपूर्ण नज़रिया सामने आता है। बरनी, जिसने सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक़ की अनुकंपा का उपभोग किया था, वह इस ग्रंथ के पहले संस्करण में मुहम्मद बिन तुग़लक़ के कृत्यों की प्रशंसा से भरा हुआ है, दूसरे संस्करण में या तो मुहम्मद बिन तुग़लक़ के कुछ कृत्यों को संक्षिप्त कर दिया गया है या उनकी व्याख्या का परिप्रेक्ष्य बदल दिया गया है। पीटर हार्डी यह तर्क देते हैं कि मुहम्मद बिन तुग़लक़ के शासन का वर्णन करते हुए 'वह अपने संरक्षणदाता [मुहम्मद बिन तुग़लक़] के प्रति कृतज्ञता तथा ईश्वर व मनुष्य के प्रति अपने कर्तव्य पर गहरे विश्वास के बीच बँटा हुआ है।' बरनी का यह मानना था कि क्रूर दंड तथा अयोग्य अधिकारियों की नियुक्ति सल्तनत का विनाश करेंगे और सुल्तान की सत्ता को कमज़ोर बनाएँगे, जिसका मुहम्मद बिन तुग़लक़ में वैसे ही अभाव था क्योंकि वह यह नहीं जानता था कि कब कठोरता से पेश आना है और कब नरमी से। ऐसा ही उसके दोनों संस्करणों में फ़िरोज़ के पहले छः सालों के इतिहास के वर्णन में देखा जा सकता है। पहले संस्करण में यह बहुत ही संक्षेप में है तथा पूरे चार सालों के वर्णन को उसने केवल एक अध्याय में समेट लिया है। दूसरे संस्करण में यह बहुत विस्तृत है तथा छः अध्यायों में फैला हुआ है। पहले संस्करण में जहाँ मुहम्मद बिन तुग़लक़ के अभिजात/कुलीन वर्ग (nobility) का वर्णन काफ़ी विस्तृत है और फ़िरोज़ द्वारा मुहम्मद तुग़लक के कृपापात्र *उमरा* को हटाने का उल्लेख करता है; वहीं दूसरे संस्करण में वह केवल स्वयं को भटनेर के क़िले में बंदी बनाए जाने का उल्लेख करता है, इसका भी उसने अधिक विस्तृत उल्लेख अपनी कृति *साहीफ़ा* में किया है। उसकी उच्च-कुल/निम्न-कुल की सोच भी इससे प्रभावित हुई थी। अपने पहले संस्करण में वह मुहम्मद बिन तुग़लक़ द्वारा निम्न-कुल के लोगों को उच्च ओहदों पर नियुक्त करने की आलोचना नहीं करता है; यहाँ तक कि उसने अज़ीज़ खम्मार का भी केवल ज़िक्र भर किया है; लेकिन दूसरे संस्करण में उसकी वाणी निम्न-कुल के लोगों के प्रति तीखी हो जाती है और वह मुहम्मद बिन तुग़लक़ के अधीन शाही अनुकम्पा पाने वाले निम्न-कुलों की पृष्ठभूमि के लोगों की विस्तृत सूची प्रस्तुत करता है। अपने पहले संस्करण में बरनी सुल्तान को *शरिया* के विरुद्ध जाकर सज़ा न देने के संबंध में सलाह देने का साहस न कर पाने का कोई उल्लेख नहीं करता है। लेकिन, दूसरे संस्करण में वह पश्चाताप करते हुए स्वयं को 'निर्दोष' सिद्ध करने के प्रयास में विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है; वह यह साफ़ करता है कि वह धर्मभीरु लोगों को सज़ा देने की मुहम्मद बिन तुग़लक़ की नीति का हिस्सा नहीं था, इसके बजाय वह सुल्तान के इन कृत्यों के लिए 'अज्ञात मूल' के लोगों को ज़िम्मेदार ठहराता है। इसी तरह, अपने प्रथम संस्करण में वह मुश्किल से ही अलाउद्दीन को ग़लत रोशनी में दिखाता है। वह 'धर्म के प्रति उसकी उदासीनता' और '*शरिया* का बिना ख़याल किए सज़ा देने' के लिए उसे कोसता नहीं हैं। लेकिन, दूसरे संस्करण में वह अलाउद्दीन को आततायी कहता है, जो ख़ुदा से भी ख़ौफ़ नहीं खाता था।

बोध प्रश्न-3

1) क्या आप मोहम्मद हबीब के तर्क से सहमत हैं कि कुछ महत्वपूर्ण मामलों में बरनी ने बाद के इतिहासकारों को लगभग गुमराह किया है?

....

....

....

2) 'विभिन्न व्यक्तियों के नाम पर बरनी द्वारा *फ़तावा* में दिए गए बहुत से उपदेश काल्पनिक प्रतीत होते है।' टिप्पणी कीजिए।

....

....

....

12.6 बरनी की राजत्व-संबंधी अवधारणा

बरनी के लेखन में सुल्तान का केंद्रीय स्थान था। उसके विश्लेषण में, हालांकि 'राजा और उसकी प्रजा के बीच परस्पर दायित्व' का विचार सामने नहीं आता है। अपनी *फ़तावा* में बरनी प्रशंसा करते हुए कहता है, '*पादशाह* ईश्वर की आश्चर्यजनक रचनाओं में से एक है और ईश्वर अच्छी और बुरी, दोनों, तरह की परिस्थितियों का रचयिता है।' अतः, 'सुल्तान के चरित्र के अनुरूप राजत्व स्वयं में अच्छा

या बुरा हो सकता है' (हबीब, 1998: 26)। उच्च-कुल का विचार उस पर इतना हावी था कि महमूद ग़ज़नी और बलबन (तथाकथित उच्च कुलीनों) का निरूपण करते हुए, बरनी 'राजत्व' को 'ईश्वर के प्रतिनिधि' (viceregency of God) के रूप में प्रस्तुत करता है। सुल्तान को 'ईश्वर की प्रतिछाया' (*ज़िल्ल-अल्लाह*) के रूप में पेश किया गया है। लेकिन, जलालुद्दीन ख़लजी के संदर्भ में, 'राजत्व केवल छल और दिखावा था। यद्यपि बाह्य रूप से इसमें भव्यता और अलंकरण नज़र आता था, अंदर से यह कमज़ोर और तुच्छ (*ज़ार-ज़ार*) था'। इसके अलावा राजत्व का वास्तविक स्रोत 'शक्ति' और 'बल' था। किंतु बरनी राजतंत्र को बनाए रखने के लिए मुख्य कारक के रूप में हिंसा और बल के प्रयोग में अपने युग की व्यग्रता भी व्यक्त करता है। इसके साथ ही उसके अनुसार इसने राजशाही को 'सुभेद्य'(vulnerable) भी बनाया। वस्तुतः, बरनी ने भारत में इसका ही प्रत्यक्ष अनुभव किया था। लेकिन, इब्न ख़ल्दून के *असाबिया* (सत्ताधारी वर्ग के बीच एकता) के विचार का बरनी के लेखन में कोई स्थान नहीं है। यद्यपि दोनों ही वंशगत पतन के प्रति चिंतित थे और उनके पास इसका कोई समाधान नहीं था।

राजतंत्र की प्रतिष्ठा को सुनिश्चित करने के लिए बरनी ने सुल्तान द्वारा भव्यता और शानो-शौकत का प्रदर्शन करने पर बल दिया है, एक विचार जो सम्भवतः बलबन द्वारा किए गए ऐश्वर्य और शानो-शौकत के प्रदर्शन की सफलता से बरनी के मस्तिष्क में उभरा होगा। वह महमूद को यह कहते हुए उद्धृत करता है कि, 'ऐश्वर्य और शानो-शौकत का प्रदर्शन यद्यपि 'इस्लाम के विरूद्ध है लेकिन तब भी शासक के लिए ये आवश्यक हैं।' वह इसी प्रकार के शब्द बलबन की ज़बान में भी व्यक्त करता है, 'जब तक कोई सुल्तान दरबार के आयोजन और कठोर शिष्टाचारों को लागू करने में ईरानी सम्राटों (अकासिर, खुसरो) का अनुसरण नहीं करता है वह प्रजा के बीच आवश्यक भय (*हैबत*) पैदा नहीं कर पाएगा जो आज्ञाकारिता के लिए अनिवार्य है' (हबीब 1998: 26)।

12.7 बरनी के लेखन में समय तथा कालानुक्रम की अवधारणा

जहाँ एक इतिहासकार के रूप में बरनी इतिहासकार के शिल्प में निपुण है, कालानुक्रम और तिथियों को प्रस्तुत करने में वह अक्सर ग़लती कर बैठता है। समय की उसकी अवधारणा स्थिर नहीं है बल्कि उसमें परिवर्तन आता रहता है, यहाँ तक कि कालानुक्रम को भी अक्सर ग़लत तरीके से व्यवस्थित किया गया है, तिथियाँ या तो अक्सर ग़लत हैं या दी ही नहीं गई हैं। बरनी स्वयं अपनी *तारीख़* में स्वीकार करता है, 'इस विषय में मैं भरोसेमंद नहीं हूँ कि कौन सी विजय, विद्रोह या घटना पहले हुई और कौन सी बाद में, और मैंने घटनाओं के कालानुक्रम का सही अनुसरण नहीं किया है, ताकि बुद्धिमान लोग राज्य के मामलों को उनकी समग्रता में समझकर चेतावनी और बुद्धि से ग्रहण करें।' बरनी द्वारा मलिक बहाउद्दीन के विद्रोह का समय ग़लत उल्लिखित किया गया है, यह समस्या तब और गंभीर हो जाती है जब घटनाओं के ग़लत क्रम को 'कार्य-कारण के रूप' में प्रस्तुत किया जाता है।

12.8 बरनी: अर्थशास्त्री के रूप में

बरनी दृढ़तापूर्वक 'स्वतंत्र-अर्थव्यवस्था' के विचार के विरुद्ध था। बरनी का विश्वास था कि सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में स्थिरता को सुनिश्चित करने के लिए कीमतों के उतार-चढ़ाव को विनियमित करना राज्य का प्राथमिक कर्तव्य था, जो सामान्य रूप से लोगों की भौतिक स्थिति के लिए लाभदायक होता। बरनी, संभवतः, अलाउद्दीन ख़लजी के मूल्य-नियंत्रण उपायों की सफलता से प्रभावित था जिसको वह आम जनता के हित में होने का श्रेय देता है। बरनी ने बड़ी ही सटीकता और अत्यधिक तथ्यात्मक सत्यता के स्तर की जानकारी के साथ अलाउद्दीन के मूल्य-नियंत्रण उपायों का वर्णन किया है। वह तर्क देता है कि 'व्यापारियों को दी गई स्वतंत्रता ने उन्हें जमाखोरी करने, बाज़ार में अभाव पैदा करने और फिर आवश्यक वस्तुओं के दाम बढ़ाने हेतु प्रोत्साहित कर दिया होता' (सिंद्दीक़ी, 2014: 207)। और इसका परिणाम जनता के उत्पीड़न में निकलता। बरनी अलाउद्दीन के बाज़ार नियंत्रण उपायों को मंगोल आक्रमणों के सिलसिले से दिल्ली सल्तनत में पैदा हुए 'गंभीर वित्तीय संकट' के समाधान के रूप में देखता है, जिसके लिए विशाल सेनाओं और क़िलेबंदी के माध्यम से सीमाओं को सुरक्षित बनाए जाने की जरूरत थी। बरनी के विश्लेषण के अनुसार अलाउद्दीन के

बाजार नियंत्रण उपायों की सफलता 'भारी कृषि कराधान' और इसके 'कठोर क्रियान्वयन' पर आधारित थी। बरनी का विश्लेषण है कि, 'कम कीमतों का यह मतलब नहीं था कि सभी की वास्तविक आय में वृद्धि हो गई थी। इसका तात्पर्य था कई लोगों की वास्तविक आय में वृद्धि हुई और बहुत से दूसरों की आय में कमी आयी' (हबीब 1984ः 408)।

फ़िरोज़ शाह के शासन से संबंधित उसका छठा अध्याय फ़िरोज़ शाह द्वारा बनाई जा रही नहरों का विशिष्ट विवरण देता है, बरनी सुल्तान के इन उपायों को दीर्घकालिक परिणामों के रूप में देखता है और भविष्य की पीढ़ियों के लिए इसके लाभ को रेखांकित करता है। वह यह तर्क रखता है कि यह उपाय इस क्षेत्र की सामाजिक-आर्थिक वृद्धि के लिए लाभकारी साबित होंगे।

बोध प्रश्न-4

1) बरनी के राजत्व की अवधारणा को संक्षेप में बताइए।

....

....

....

2) बरनी के लेखन में समय और कालानुक्रम के विचार का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

3) एक अर्थशास्त्री के रूप में बरनी का विश्लेषण कीजिए।

....

....

....

12.9 बरनी के विचारों में तर्क तथा तार्किकता

बरनी की रचनाएँ व्यापक रूप से तर्कबद्ध विचार को प्रदर्शित करती हैं। विडंबना है कि उसने अपने समय के तर्कशास्त्रियों के सामिप्य से अपने को दूर रखा। वह एक ऐसे समय में पैदा हुआ था जब इस्लामिक दुनिया में तर्कपूर्ण विज्ञानों (*इल्म-ए माकूल*) पर अधिक बल दिया जा रहा था। वह उनके प्रति अधिक आलोचनात्मक था। बरनी ने अपनी *फ़तावा* में यह दावा किया है कि तर्कशास्त्री/दार्शनिक (*फ़लासिफ़ा)* वध किए जाने योग्य हैं। इसी प्रकार वह **मुताज़िलाओं** का दमन करने के लिए महमूद की प्रशंसा करता है। बरनी अपने संरक्षणदाता मुहम्मद बिन तुग़लक़ की *माकूलत* पर विश्वास के लिए आलोचना करता है और वह धर्मशास्त्रियों के प्रति मुहम्मद बिन तुग़लक़ की कठोरता के पीछे इसे ही मुख्य कारण बताता है। बरनी मुहम्मद बिन तुग़लक़ द्वारा 'दार्शनिकों को संरक्षण देने और पैग़ंबर की परंपराओं के अध्ययन को नज़रअंदाज करने के लिए आलोचना करता है' (हार्डी 1960ः 37)। इस प्रकार, बरनी के अनुसार, सुल्तान को तर्कशास्त्रियों/दार्शनिकों के ऊपर परंपरावादियों को तरज़ीह देनी चाहिए।

सादृश्यता और व्याख्या बरनी के ऐतिहासिक विवरण के प्रमुख तत्व हैं। बरनी ने अत्यधिक बल प्रयोग द्वारा विभिन्न वंशों के विध्वंस और प्रतिस्थापन को देखा था (बलबन ने इलबरियों को उखाड़ फेंका था, और बलबन के वंशजों को ख़लजियों ने) इसलिए बरनी अपनी *फ़तावा* में वंशगत शासन के पक्ष में बलपूर्वक तर्क देता हैः 'अगर कोई थोड़ी-बहुत शक्ति हासिल कर लेता है, वह एक अधिक्षेत्र पर कब्ज़ा कर लेता है, अपने से पूर्व वहाँ स्थापित व्यक्ति को नष्ट कर और स्वयं को सुल्तान घोषित कर देता है इसके बाद उसे *उमरा,* समर्थकों और दरबारियों का सहयोग मिलता है ... किंतु जब उसकी मृत्यु हो जाती है या उसकी हत्या कर दी जाती है, और अन्य व्यक्ति सुल्तान बन जाता है; और तब वह पुराने शासक के *उमरा* और उसके सेवकों के परिवारों और सम्पत्तियों को नष्ट कर देता है, और नए *उमरा* वर्ग को लाकर स्वयं की स्थिति को मज़बूत बनाता है, यदि वह पुराने लोगों को बनाए रखेगा, तो न तो वे उस पर विश्वास कर पाएँगे और न ही वह उन पर' (हबीब 1998ः 27-28)।

बरनी बलबन की नीतियों की अत्यधिक 'रक्तरंजित, निर्भीक और दृढ़निश्चयी' होने के लिए आलोचना करता है (हार्डी, 1960: 30)। वह बलबन द्वारा जघन्य रूप से शेर ख़ान (बलबन का चचेरा भाई) और **तुग़रिल** की हत्या करने के लिए अत्यधिक आलोचनात्मक रवैया अपनाता है। यद्यपि उसका तर्क धार्मिक लहज़ा लिए हुए है कि यह *शरिया* के विरुद्ध है और उसे अपने कृत्यों के लिए क़यामत के दिन अल्लाह के सामने जवाब देना होगा।

12.10 बरनी की उच्च-कुल तथा निम्न-कुल की अवधारणा

बरनी ने न केवल तर्कशास्त्रियों (rationalists) के सानिध्य से स्वयं को दूर रखा था बल्कि वह 'निम्न-कुल' ('निम्न' वंश में उत्पन्न जन) के लोगों को नीची निग़ाह से देखता था और 'उच्च-कुल' में उत्पन्न, अभिजात्य समूह के लोगों के पक्ष में था। उसने इस तरह की नियुक्तियों के प्रति अत्यंत कड़ा रुख अपनाया था। उसके लिए 'निम्न-कुल' से संबंध रखने वाले लोग 'शाही अनुकंपा' पाने के अधिकारी नहीं थे। अतः सुल्तान को केवल 'अभिजात्य कुल' में जन्म लेने वाले लोगों को ओहदे प्रदान करने चाहिए। इस मामले में वह इस सीमा तक चला गया है कि उसके अनुसार 'निम्न-कुलों' में उत्पन्न धर्मांतरित लोगों के बच्चों को *मदरसों* (शिक्षण संस्थान) में प्रवेश नहीं दिया जाना चाहिए। केवल अभिजात्य परिवारों के लोगों को ही ईश्वर द्वारा शासन करने के लिए 'चुना गया' है। न्याय और स्थिरता के लिए 'उच्च कुलीनों का अस्तित्व' आवश्यक है। यहाँ वह मुख्यतः ख़लजी और तुग़लक़ शासकों (विशेषकर मुहम्मद तुग़लक़) द्वारा तथाकथित 'निम्न-कुल' के लोगों को ऊँचे पदों पर नियुक्त करने के लिए आलोचना कर रहा था। उसके लिए *बाज़ार* के लोग (व्यापारी और व्यवसायी) शाही अनुग्रह के पात्र नहीं हैं। बरनी टिप्पणी करता है कि, 'उच्च प्रशासनिक पदों पर उनकी नियुक्ति का परिणाम अस्थिरता में निकलेगा और इससे क़ानून और व्यवस्था में गड़बड़ी पैदा होगी' (सिद्दीक़ी 2014: 207)। इसे आई. एच. सिद्दीक़ी 'इतिहास का अभिजात्यवादी मत' कहते हैं (सिद्दीक़ी, 2014: 220)।

'निम्न-कुलों' के प्रति उसकी इतनी अधिक कटुता थी कि उसके लिए 'अज्ञात वंश' के व्यक्ति द्वारा लिखे गए इतिहास पर 'विश्वास' करना अनुचित था। वह तर्क देता है कि ऐसा सुल्तान जो 'निम्न-कुल' के लोगों के साथ संबंध रखता है वह अपने 'शासन की स्थिरता और इस्लाम की सर्वोच्चता को ख़तरा पहुँचाता है'। मुबारक ख़लजी द्वारा खुसरो ख़ान बरवरी की नियुक्ति को उद्धृत करते हुए, जिसका अंतिम परिणाम खुसरो ख़ान के हाथों मुबारक ख़लजी की हत्या में निकला, बरनी कहता है कि सुल्तान को 'अयोग्य सेवकों' को आगे नहीं बढ़ाना चाहिए।

संभवतः अन्य किसी *तारीख़* में 'निम्न-कुलों' के प्रति ऐसी कड़वाहट का गहरा भाव नहीं है जैसा बरनी के लेखन में नज़र आता है। इस तरह की कड़वाहट की एक संभावित व्याख्या इस तथ्य से की जा सकती है कि बरनी को अपनी विद्वता और विद्वानों के कुल से संबंधित होने की पृष्ठभूमि के बावजूद शाही अनुकंपा प्राप्त करने हेतु काफ़ी प्रतीक्षा करनी पड़ी थी और इसका कारण उसने प्रत्यक्षतः तुग़लक़ सुल्तान मुहम्मद बिन तुग़लक़ द्वारा 'निम्न-कुलों' के नवीन वर्गों के लोगों को सेवा में शामिल करने पर लगाया है। उसका विश्लेषण इस तथ्य की ओर भी संकेत करता है कि सल्तनत काल के दौरान 'निम्न-कुल' के लोगों के उत्थान ने निश्चित रूप से पुराने अमीरों/कुलीनों और नए नियुक्त वर्गों के बीच सामाजिक तनाव को जन्म दिया और जिसने, परिणामस्वरूप, 'सामाजिक संतुलन' में गड़बड़ी पैदा की।

12.11 बरनी के लेखन में धर्म तथा इतिहास

अन्य मुस्लिम इतिहासकारों/तारीख़नवीसों की तरह बरनी में भी प्रत्येक चीज़ के लिए *कुरान* और पैग़ंबर को श्रेय देने का बोध काफ़ी गहरा है। बरनी अपने समय के धर्म-शास्त्र में प्रशिक्षित था और *शरिया* पर आधारित और शासित सत्ता पर उसका विश्वास था। राजा और धर्मविदों को उसने *शरिया* के सिद्धांतों और सच्चे ईमान के रक्षक के रूप में प्रस्तुत किया है। उसने 'राजत्व और धर्म' को समरूप देखा है। विचित्र है कि उसने इस्लामी राजव्यवस्था में *खिलाफ़त* की केंद्रीय भूमिका को नज़रअंदाज किया है, यह 1258 में मंगोलों द्वारा बग़दाद की *खिलाफ़त* को नष्ट किए जाने का प्रभाव हो सकता है।

उसकी *फ़तावा* में 'महमूद अपने पुत्रों को *मुहतसिबों* या आचरण पर नज़र रखने वाले अधिकारियों की *शरिया* का अनुपालन सुनिश्चित करने हेतु नियुक्ति करने, शराब बनाने पर रोक लगाने और वेश्याओं, नाचने-गाने वालों, इत्यादि को प्रतिबंधित करने की सलाह देता है' (हबीब 1998: 33)। हालांकि वह

अपनी *तारीख़* में अधिक व्यावहारिक और नरम दिखाई पड़ता है, 'अगर पाप के धंधे में लगे हुए लोग निकृष्ट स्थानों में ही बने रहें और उनके पाप नज़र में ना आएँ तो ऐसे लोगों को प्रतिबंधित नहीं करना चाहिए क्योंकि अन्यथा कई धूर्त लोग, अपनी लोलुपता के बल से, पुरुषों के हरम में प्रवेश पा जाएँगे' (हबीब 1998: 33)।

वह इस्लाम और इस्लामी सिद्धांतों का रक्षक था, अतः जो कोई भी इस्लाम के भीतर इस्लामी सिद्धांतों को भंग करता, उसे और *काफ़िर/ज़िम्मी* को दंड दिए जाने की आवश्यकता थी। *शाफ़ई* सिद्धांत सभी *काफ़िरों* को इस्लाम में धर्मांतरित करने की वकालत करता है। यद्यपि बरनी ने अपनी *साहीफ़ा-ए नात-ए मुहम्मदी* में यह तर्क दिया है कि इल्तुतमिश ने अपने मंत्री की सलाह के इस विचार को नकार दिया था। इस प्रकार वह यह संकेत प्रस्तुत करता है कि राजनीतिक व्यवहारिकता, न कि इस्लामिक सिद्धांत, शासन की कला में प्रभावी होती है। लेकिन *काफ़िरों* से कहीं अधिक इस्लाम के विधर्मियों (इस्लाम के भीतर के तर्कशास्त्री/दार्शनिकों) की बरनी द्वारा अधिक कड़ी आलोचना की गई है।

बरनी के पहले संस्करण में अलाउद्दीन की धार्मिक आलोचना नहीं की गई है, लेकिन अपने दूसरे संस्करण में बरनी अलाउद्दीन की धर्म के प्रति उदासीनता और उसके द्वारा की गई *शरिया* की उलाहना की निंदा करता है। वह आलोचना करता है कि लोग क्यों सुल्तान की प्रशंसा आध्यात्मिक शक्तियाँ धारण करने के लिए करते हैं और उसके लिए प्रार्थना करते हैं। वह सुल्तान को एक 'आततायी बताते हुए आश्चर्य करता है कि कैसे ख़ुदा से ख़ौफ़ न खाने वाला कोई व्यक्ति आध्यात्मिक शक्तियों को धारण कर सकता है' (सिद्दीक़ी 2014: 210)।

बोध प्रश्न-5

1) बरनी तर्कवादी विचारों और दार्शनिकों के विरुद्ध क्यों था?

....

....

....

2) उच्च कुल और निम्न कुल के संबंध में बरनी के विचार क्या थे?

....

....

....

12.12 सारांश

मध्यकालीन भारत के इतिहासकारों के बीच अपने इतिहास के गहरे बोध के कारण बरनी अलग नज़र आता है। वह एक इतिहासकार के कर्तव्य के प्रति सचेत था। अपनी *तारीख़* की प्रस्तावना में वह विस्तार से इतिहासकार का ध्यान कहाँ केंद्रित होना चाहिए, इसकी व्याख्या करता है। अपनी संपूर्ण *तारीख़* में वह 'सत्य' को प्रस्तुत करने पर बल देता रहा है। यद्यपि, वह वस्तुनिष्ठता तथा पक्षपात-विहीन इतिहास को प्रस्तुत करने का दावा करता है, लेकिन उसका वृत्तांत पक्षपात से मुक्त नहीं है। उसकी परिस्थितियों, विशेषकर उसके अंतिम वर्षों की घोर ग़रीबी, ने उसके लेखन के साथ ही उसके विश्लेषण पर भी गहरा प्रभाव डाला था। यह उसकी *तारीख़* के दो संस्करणों में बहुत स्पष्ट नज़र आता है जहाँ उसकी व्याख्या और तथ्यात्मक जानकारियों में परिवर्तन आ गया है और अक्सर उन्हें संशोधित किया गया है। बरनी अपनी तुर्क वंश-परम्परा के प्रति भी सचेत था। अपनी विद्वता तथा अभिजात्य पृष्ठभूमि के बावजूद उसे शाही अनुकंपा काफ़ी देर से प्राप्त हुई थी, और बाद में एक बार फिर उसे पूरी तरह से शाही अनुकंपा से निष्कासित कर दिया गया था। इन सबका दोष वह 'निम्न-कुलों' पर की गई कृपा पर लगाता है। अपनी संपूर्ण *तारीख़* और *फ़तावा* में वह 'निम्न-कुल' के लोगों को तुग़लक़ सुल्तानों द्वारा उच्च पदों पर आसीन करने की कड़ी आलोचना करता है। और बलबन की उनसे दूरी बनाए रखने के लिए तारीफ़ करता है।

कालानुक्रम और तिथियों को लेकर ख़ामी होने के बावजूद बरनी कार्य और कारण के विश्लेषण के संबंध में काफ़ी मज़बूत नज़र आता है। अपने संपूर्ण लेखन में बरनी एक सच्चा परंपरावादी था और

तर्कशास्त्र तथा दार्शनिकों से घृणा करता था। इतिहास के अपने गहरे बोध के बावजूद उसके ऐतिहासिक विश्लेषण का हर रास्ता *कुरान, शरीयत* और *हदीस* से होकर जाता था। इसीलिए पीटर हार्डी ने बरनी पर 'इतिहास की व्याख्या धर्म-विद्या की एक शाखा के रूप में करने का' आरोप लगाया है।

12.13 शब्दावली

अल-बैहाक़ी: बैहाक़ी (जन्म 994 सी ई) शाफ़ई *फ़िक्ह* (न्यायशास्त्र) और *हदीस* का विद्वान था और इस्लामी धर्म-विद्या की अशरायी शाखा से संबंधित था। उसने *हदीस* की परम्परागत व्याख्या में महत्वपूर्ण योगदान दिया था

अमीर हसन सिज्ज़ी: वह अमीर खुसरो तथा ज़ियाउद्दीन बरनी का युवा समकालीन था। साथ ही वह निज़ामुद्दीन औलिया का शागिर्द भी था। निज़ामुद्दीन औलिया के आग्रह पर उसने *फ़वायद-उल फ़ुआद* (*मलफ़ूज़ात;* शेख़ की वार्ताएँ तथा परिचर्चाएँ) की भी रचना की। इसमें 1309 से 1322-1323 तक के काल के संवादों को शामिल किया गया है

अमीर ख़ुर्द: अमीर ख़ुर्द (मृ. 1368-1369) अपने समय के सूफ़ियों की जीवनी *सियार-उल औलिया* लिखने के लिए जाना जाता है। उसके पिता और दादा बाबा फ़रीद *गंज-ए शकर* के शिष्य थे। उसके दादा की मृत्यु के बाद उसके पिता दिल्ली चले आए। अमीर ख़ुर्द का जन्म भी दिल्ली में हुआ था, वह निज़ामुद्दीन औलिया और बाद में नसीरुद्दीन चिराग-ए दिल्ली का शागिर्द बना। फ़िरोज़ तुग़लक़ के दौर में उसने उपर्युक्त संस्मरण को लिखा था

हाजिब: *अमीर हाजिब* दरबार का मुख्य व्यवस्थापक था। उसे *बारबक* भी कहा जाता था। वह दरबार के समारोहों का प्रमुख था। *हाजिब* उसके सहायक होते थे, सुल्तान को पेश की गई समस्त अर्ज़ियाँ उसके माध्यम से जाती थीं। कुछ *हाजिब* हमेशा सुल्तान की सेवा में हाज़िर रहते थे

मुतज़िलाई: इस्लाम का चिंतनशील सिद्धांतशास्त्र। इसका संस्थापक मुतज़िला था। अब्बासी ख़लीफ़ाओं ने मुतज़िला के दर्शन को नकार दिया था। कई प्रमुख मुतज़िलाइयों ने सुन्नी इस्लाम के अपने मत-सम्प्रदाय स्थापित किए। उनमें से सर्व-प्रमुख था अबुल हसन अल-अशारी जो इस्लामी न्यायशास्त्र के अशारायी मत का संस्थापक था

तरमाशिरीन: एक चग़ताई ख़ान – दव्वा ख़ान – का पुत्र अलाउद्दीन तरमाशिरीन मावराउन्नहर का शासक था। मुल्तान तथा सिंध पर आक्रमण करते हुए वह मेरठ के निकट (1328-1329) तक पहुँच गया था। लेकिन मुहम्मद तुग़लक़ ने सफलतापूर्वक उसके हमले को निष्प्रभावी बना दिया था

तुग़रिल: *तुर्कान-ए चिहिलग़ानी* (चालीस का समूह) का सदस्य। वह बलबन के गद्दी पर बैठने के वक्त लखनौती का *मुक़्ता* था। बलबन के आठवें राज्य-वर्ष (1275) में उसने विद्रोह किया और सुल्तान मुग़ीसुद्दीन की उपाधि धारण की। अंततः इस विद्रोह का दमन कर दिया गया तथा तुग़रिल और उसके समर्थकों को कठोर दंड दिया गया

वकील-ए दर: वह राजपरिवार/राजदरबार का प्रमुख अधिकारी था। राजघराने के वेतन और अन्य सभी प्रकार के भुगतान उसके द्वारा स्वीकृत होते थे। सभी शाही आदेशों को उसके माध्यम से जारी किया जाता था

12.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें भाग 12.2

2) देखें भाग 12.3; ख) *तारीख़-ए बरमका*

3) देखें भाग 12.3; क) *हसरतनामा*

बोध प्रश्न-2

1) देखें भाग 12.4

2) देखें भाग 12.4

बोध प्रश्न-3

1) देखें भाग 12.5

2) देखें भाग 12.5

बोध प्रश्न-4

1) देखें भाग 12.6

2) देखें भाग 12.7

3) देखें भाग 12.8

बोध प्रश्न-5

1) देखें भाग 12.9

2) देखें भाग 12.10

12.15 संदर्भ ग्रंथ

ऑवर, ब्लेन, (2015) 'प्री-इंटेलेक्चुअल डिबेट्स ऑन नॉलेज ऑफ़ हिस्ट्री एंड ज़ियाउद्दीन बरनीस *तारीख़-ए फ़िरोज़शाही*', *इंडियन एकोनोमिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू*, भाग 52 (2), पृ. 207-223.

बरनी, सैयद हसन, (1938) 'ज़ियाउद्दीन बरनी', *इस्लामिक कल्चर*, भाग XII: 1, पृ. 76-97.

हबीब, इरफ़ान, (1998) 'ज़िया बरनीस विज़न ऑफ़ द स्टेट', *द मिडीवल हिस्ट्री जर्नल*, भाग 2 (1), पृ. 19.36.

हबीब, इरफ़ान, (1984) 'द प्राइस रेग्युलेशंज़ ऑफ़ अलाउद्दीन ख़लजी – अ डिफ़ेन्स ऑफ़ ज़िया बरनी', *इंडियन एकोनोमिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू*, भाग 21 (4), पृ. 393-414.

हबीब, मोहम्मद, (1950) '*साहीफ़ा-ए नात-ए मुहम्मदी* ऑफ़ ज़ियाउद्दीन बरनी', *मिडीवल इंडिया क्वार्टरली*, भाग 1 (3.4), पृ. 100-106

हबीब, मोहम्मद, (2016) 'लाइफ़ एंड थॉट ऑफ़ ज़ियाउद्दीन बरनी', मोहम्मद हबीब, इरफ़ान हबीब द्वारा सम्पादित, *स्टडीज़ इन मिडीवल इंडियन पालिटी एंड कल्चर: देल्ही सल्तनेत एंड इट्स टाइम्स* (दिल्ली: ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस), मूल रूप से *मिडीवल इंडिया क्वार्टरली*, 1957 व 1958 में प्रकाशित.

हबीबुल्लाह, ए. बी. एम., (1941) 'री-इवैल्यूएशन ऑफ़ द लिटरेरी सोर्सेज़ ऑफ़ प्री-मुग़ल हिस्ट्री', *इस्लामिक कल्चर*, भाग XV, पृ. 207-216.

हार्डी, पीटर, (1957) 'द ओरेटियो रेक्टा ऑफ़ बरनीज़ *तारीख-ए फ़िरोज़शाही* – फ़ैक्ट ऑर फ़िक्शन', *बुलेटिन ऑफ़ द स्कूल ऑफ़ ऑरीएंटल एंड अफ़्रीकन स्टडीज़*, भाग 20, पृ. 315-321.

हार्डी, पीटर, (1960) *हिस्टॉरीयंज़ ऑफ़ मिडीवल इंडिया* (लंदनः लुजाक एंड कम्पनी लि.).

हसन, एस. नुरूल, (1957 व 1958) 'लाइफ़ एंड थॉट ऑफ़ ज़ियाउद्दीन बरनी', *मिडीवल इंडिया क्वार्टरली*, भाग 3 (1-2) (3-4), पृ. 1-12; 197-252; बाद में यह द *पोलिटिकल थियोरी ऑफ़ द देल्ही सल्तनेत*, इलाहाबाद, 1960 में प्रकाशित हुआ.

निज़ामी, के. ए., (1983) *ऑन हिस्ट्री एंड हिस्टॉरीयंज़ ऑफ़ इंडिया* (दिल्लीः मुंशीराम मनोहरलाल).

सिद्दीक़ी, इक़्तिदार हुसैन, (2014) *इंडो-पर्शियन हिस्टॉरीआग्रफ़ी अपटू फ़ॉर्टीन्थ सेंचरी*, अध्याय 9: 'ज़ियाउद्दीन बरनीः अ थिंकर हिस्टोरीयन' (नई दिल्लीः प्राइमस बुक्स).

12.16 शैक्षणिक वीडियो

ए टॉक ऑन 'तारीख़-ए फिरोज़शाही' बाय बरनी विद प्रो. अजीज़ुद्दीन हुसैन
https://www.youtube.com/watch?v=2oRpdMxeAt4

ज़ियाउद्दीन बरनी; हिस्टॉरियन एंड पॉलीटिकल थ्योरिस्ट
https://www.youtube.com/watch?v=FTeyUAnKPlg

पॉलीटिकल थॉट ऑफ़ ज़ियाउद्दीन बरनी
https://www.youtube.com/watch?v=ROjlme3uer0

इकाई 13 मुहम्मद क़ासिम फ़रिश्ता*

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 1600 के आसपास भारत में इतिहास लेखन

13.3 इतिहासकार और उसका संरक्षणदाताः फ़रिश्ता और इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय

13.4 फ़रिश्ता की *तारीख़*

13.4.1 इतिहास की अवधारणा

13.4.2 समय तथा कालक्रम

13.4.3 स्रोत

13.5 फ़रिश्ता की *तारीख़* के संबंध में यूरोपीय दृष्टिकोण

13.6 सारांश

13.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.8 संदर्भ ग्रंथ

13.9 शैक्षणिक वीडियो

13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- 1600 के आसपास इतिहास लेखन की प्रवृत्तियों के विषय में जान पाएँगे,
- फ़रिश्ता की पृष्ठभूमि और जिस सांस्कृतिक विरासत का वह निर्वाह कर रहा था उसे समझ पाएँगे,
- फ़रिश्ता की सांस्कृतिक विरासत के उसके लेखन पर पड़े प्रभाव को जान पाएँगे,
- इतिहास के संबंध में फ़रिश्ता के विचार को समझ पाएँगे,
- समय के संबंध में फ़रिश्ता के विचार की व्याख्या कर पाएँगे,
- फ़रिश्ता की कृतियों की अलेक्ज़ेंडर डाउ द्वारा की गई व्याख्याओं का विश्लेषण कर पाएँगे, और
- फ़रिश्ता के लेखन के संबंध में यूरोपीय दृष्टिकोण का परीक्षण कर पाएँगे।

13.1 प्रस्तावना

फ़रिश्ता की *गुलशन-ए इब्राहिमी* या *तारीख़-ए फ़रिश्ता* 17वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में बीजापुर की दक्खन सल्तनत में भारत में मुस्लिम शासन का फ़ारसी इतिहास है। उस समय के इतिहासलेखन के स्थापित प्रतिमानों पर आधारित यह ग्रंथ 11वीं शताब्दी में महमूद ग़ज़नवी के समय से अपने संरक्षणदाता, बीजापुर के सुल्तान इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय, के समय तक की घटनाओं और राजवंशों की परंपरागत *तारीख़* है। चूँकि इसे उस समय के सर्वाधिक प्रभावशाली उत्तर भारत के मुग़ल राजवंश के संरक्षण में नहीं लिखा गया था, इसने वह प्रसिद्धि कभी नहीं पाई जो, उदाहरण के लिए अबुल फ़ज़ल अल्लामी (मृ. 1602) के ऐतिहासिक लेखन *अकबरनामा* तथा *आईन-ए अकबरी* को आज तक प्राप्त है। यह थोड़ा आश्चर्यजनक भी है क्योंकि अपने लिखे जाने के बाद *तारीख़-ए फ़रिश्ता* भारतीय उपमहाद्वीप में फ़ारसी इतिहासलेखन के लिए एक तरह की आदर्श *तारीख़* बन गई थी, जिसकी पुष्टि भारत और यूरोप के कई संकलनों में बड़ी संख्या में इसकी उपलब्ध पांडुलिपियों से

* **डॉ. फिलिप बॉकहोल्ट, लाइपज़िग यूनिवर्सिटी, लाइपज़िग, जर्मनी**

होती है, और साथ ही इस कृति के विभिन्न संशोधित और लघु संस्करणों की उपलब्धता से भी, और फ़ारसी, उर्दू, हिंदी, सिंधी, बंगाली तथा मराठी तारीख़ों में इसे अपनाए जाने से भी इसकी पुष्टि होती है। *द हिस्ट्री ऑफ़ फ़रिश्ता*, अपने अंग्रेजी अनुवाद के रूप में, जैसे इसे अलेग्ज़ेंडर डाउ ने 1768 तथा 1772 में और जॉन ब्रिग्ज़ ने 1829, में उपलब्ध कराया था, यूरोप के प्रबोधन युग के दार्शनिकों के लिए 18वीं शताब्दी के आखिर और 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में भारत के संबंध में दृष्टिकोण बनाने के लिए एक महत्वपूर्ण कृति बन गई थी। और इस प्रकार इसने भारत की आरंभिक औपनिवेशिक छवियों के निर्माण को भी प्रभावित किया था।

13.2 1600 के आसपास भारत में इतिहास लेखन

फ़रिश्ता की *तारीख़*, जिसे 1600 के आसपास लिखा गया था, वैश्विक और राजवंशों के फ़ारसी में इतिहासलेखन की उस दीर्घ परम्परा का हिस्सा है जो भारतीय उपमहाद्वीप में आरंभिक विजयों के ठीक बाद मुस्लिम राजनीतिक इकाइयों में उभरने लगी थी। यह परम्परा ग़ज़नवी काल के इतिहासकारों, जैसे अबुल फज़्ल बैहाक़ी (मृ. 1077), की कृतियों के साथ शुरू होती है जिसकी *तारीख़-ए बैहाक़ी* अब आंशिक रूप से ही उपलब्ध है, यह सुल्तान महमूद के शुरुआती अभियानों और विजयों को *तारीख़* में दर्ज करती है। इसके अतिरिक्त, इसमें दिल्ली सल्तनत काल में 13वीं और 14वीं शताब्दी में लिखी गई *तारीख़ें* भी शामिल हैं, जैसे मिनहाज उद्दीन जुज़्जानी (मृ. 1266 के बाद) की *तबकात-ए नासिरी* और बनकती (मृ.1330) की *तारीख़-ए बनकती* और इसके साथ ही मुग़ल बादशाहों के काल में लिखी गई प्रख्यात *तारीख़ें* जिन्हें सोलहवीं शताब्दी के अंत से लिखा जाना शुरू हुआ था, भी शामिल हैं। फ़रिश्ता के काल तक भारत में कई राजनीतिक इकाइयाँ थीं जिनके शासन के अधीन इतिहास लिखे गए। इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण मुग़ल साम्राज्य था जिसकी राजधानियाँ भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर में आगरा, फतेहपुर सीकरी, दिल्ली तथा लाहौर में थीं, और ये हुमायूँ के पुत्र अकबर (r. 1556-1605) के अधीन शिक्षा और कला का जीवंत केंद्र बन गई थीं। गुजरात तथा बंगाल जैसी विभिन्न सल्तनतों के अतिरिक्त दक्खन के पठार, अर्थात उपमहाद्वीप के पश्चिमी छोर, पर बहुत से एक दूसरे से जुड़े और एक दूसरे के क्षेत्र में फैले हुए भारतीय-मुस्लिम संस्कृति के कई केंद्र उभर चुके थे। इनमें निज़ाम शाहियों के अहमदनगर (1496-1636), कुतुब शाहियों के गोलकुंडा तथा हैदराबाद (1496-1687), गुलबर्गा और बीदर के बरीद शाही (1487-1619), बीजापुर के आदिल शाहियों के नगर और दुर्ग शामिल थे जो पंद्रहवीं शताब्दी के आख़िर में उदित हुए और जब तक मुग़ल साम्राज्य ने उन पर अधिकार नहीं कर लिया तब तक सोलहवीं शताब्दी के अंत तक बने रहे। इनमें से बीजापुर के लिए फ़रिश्ता ने अपनी *तारीख़* की रचना की थी।

13.3 इतिहासकार और उसका संरक्षणदाताः फ़रिश्ता और इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय

फरिश्ता, जिसका वास्तविक नाम मुहम्मद क़ासिम हिंदू शाह अस्तराबादी था, मूल रूप से ईरान से आए एक मुस्लिम शिया परिवार से संबंध रखता था और उसका जन्म 1572 से कुछ समय पहले हुआ था। अपने जीवन काल में, उसने दो दक्खन सल्तनतों, अहमदनगर और बीजापुर के सुल्तानों की सेवा की थी। इसका मुख्य कारण उसके परिवार की पृष्ठभूमि थी, जिसका संबंध अहमदनगर के दरबार से घनिष्ठ रूप से जुड़ा था, जहाँ उसका पिता गुलाम अली अहमदनगर की गद्दी के उत्तराधिकारी शाहज़ादे मीरान हुसैन निज़ाम शाह का शाही शिक्षक था। इस प्रकार फ़रिश्ता ने मुर्तज़ा निज़ाम शाह (r. 1565-1588), अहमदनगर के शासक, की सेवा में छोटी उम्र में ही प्रवेश पा लिया था और वह शाही अंगरक्षकों का अधिकारी बनाया गया था। उसके संरक्षक की हत्या के बाद जो घटनाएँ घटित हुईं उनके कारण वह 1589 के अंत में अहमदनगर छोड़कर बीजापुर आ गया और अगले वर्ष ही बीजापुर के सुल्तान इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय (r. 1580-1627) की सेवा में शामिल हो गया। इसी वर्ष (1590) फ़रिश्ता एक बार फिर दोनों सल्तनतों के बीच संघर्ष में शामिल रहा और मुश्किल से अपने जीवन की रक्षा कर पाया था। इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय की सेवा में रहते हुए उसने एक राजदूत के रूप में काम किया तथा अपने स्वामी की पुत्री के होने वाले पति मुग़ल शाहज़ादे दानियाल, मुग़ल बादशाह अकबर के पुत्र, के पास जाने की यात्रा में उनके साथ रहा था। फ़रिश्ता की मृत्यु की तारीख़ अज्ञात है और सामान्यतः इसे 1623-1624 के बाद माना जाता है। उसे दो ग्रंथों के लेखक के रूप

में स्वीकार किया जाता हैः इनमें से एक रचना चिकित्सा पर है जिसका शीर्षक *दस्तूर अल-अतिब्ब* (या *इख़्तियारात-ए क़ासिमी*) है और दूसरी इतिहास की पुस्तक *गुलशन-ए इब्राहिमी* (इब्राहिम का उद्यान) है जो *तारीख़-ए फ़रिश्ता* के रूप में मशहूर हुई। इनमें से दूसरे ग्रंथ के उसके द्वारा कम से कम दो संस्करण लिखे जाने का पता चलता है। इसमें से पहले की तिथि 1606-1607 है और दूसरा, जिसके लिए उसने *तारीख़-ए नौरसनामा* शीर्षक चुना था, उसकी तिथि 1609-1610 है।

आज भी फ़रिश्ता का संरक्षक इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय, जिसके आदिल शाही वंशजों ने बीजापुर में 1490-1686 तक शासन किया था, बीजापुर की दक्खनी सल्तनत में कलाओं को प्रोत्साहित करने के लिए विख्यात है। वह नौ वर्ष की उम्र में गद्दी पर आसीन हुआ और लगभग आधी शताब्दी तक उसने इस सल्तनत पर शासन किया। जिस काल के दौरान उसने *किताब-ए नौरस* (दखनी भाषा में लिखी गई गीतों की पुस्तक) के लेखक के रूप में प्रसिद्धि पाई। फ़रिश्ता के अलावा इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय ने फ़ारसी कवि नुरुद्दीन मुहम्मद ज़ुहुरी तुर्शीज़ी (मृ. 1616) और उसके ससुर मलिक क़ुम्मी (आदिल शाह के दरबार का राजकवि) को भी प्रोत्साहित किया, जिन्होंने साथ में मिलकर प्रशंसात्मक संग्रह *गुलज़ार-ए इब्राहिम* तथा *ख़्वान-ए ख़लील* की रचना की थी, विशेष रुप से ज़ुहुरी की काव्यात्मक रचनाएँ *सी नस्र* तथा *मीना बाज़ार* और साथ ही मलिक क़ुम्मी की *मसनवी मनबा-अल अवहार*, फ़ारसी कवि निज़ामी की विख्यात *मख़ज़न अल-असरार* पर आधारित है। यह उस समय बीजापुर के दरबार के उच्च सांस्कृतिक परिवेश को प्रदर्शित करता है।

बोध प्रश्न-1

1) फ़रिश्ता की सांस्कृतिक विरासत क्या थी?

....

....

....

2) फ़रिश्ता के आदिल शाही दरबार से क्या राजनीतिक संबंध थे?

....

....

....

13.4 फ़रिश्ता की *तारीख़*

फ़रिश्ता की *तारीख़* ग्यारहवीं शताब्दी में ग़ज़नवी वंश के समय से लेकर उसके समय अर्थात् सत्रहवीं शताब्दी के शुरुआती सालों तक के मुस्लिम भारत के इतिहास का वर्णन करती है। यह कृति एक प्रस्तावना (*मुक़द्दिमा*) तथा बारह भागों (*मक़ाला*) और एक उपसंहारात्मक अध्याय (*ख़ातिमा*) में विभाजित है। केवल *मुकद्दिमा* में उसने ग़ैर-मुस्लिमों को एक विशेष समूह के रूप में अपनी कृति की संरचना में जगह दी है, वहीं अन्य बारह *मक़ाले* केवल भारत के मुस्लिम राजवंशों से संबंध रखते हैं। पहला *मक़ाला* लाहौर के ग़ज़नवियों के इतिहास से संबंध रखता है, वहीं दूसरा *मक़ाला* दिल्ली सल्तनत तथा मुग़ल बादशाह बाबर, हुमायूँ तथा अकबर का वर्णन करता है। तीसरा *मक़ाला* बहमनी, आदिल शाही, निज़ाम शाही, कुतब शाही, इमाद शाही तथा बरीद शाही वंशों द्वारा शासित दक्खनी सल्तनतों के वर्णन को जारी रखता है, इनमें से प्रत्येक पर एक उप-भाग (*रौज़ा*) में विचार किया गया है। इसके बाद आने वाले आठ *मक़ाले* उपमहाद्वीप के क्षेत्रीय राजवंशों के इतिहास का वर्णन करते हैं, जिसमें गुजरात (*मक़ाला* 4), मालवा (5), बुरहानपुर (6), बंगाल और जौनपुर (7), सिंध, थट्टा और मुल्तान (8 तथा 9), कश्मीर (10), तथा मालाबार (11) शामिल हैं। यहाँ फ़रिश्ता भारतीय इतिहास के राजवंशों के वृत्तांत को समाप्त करता है और भारत के सूफ़ियों के संबंध में एक पूरा अध्याय (12) जोड़ता है। यह पुस्तक अंतिम अध्याय (*ख़ातिमा*) स्वर्ग के माहौल का वर्णन – हिंदुस्तान का प्रतिचित्रण – के साथ पूरी होती है, जिसमें फ़रिश्ता हिंदुस्तान की विविधता और इसके विस्तार के वर्णन के साथ उपसंहार और हिंदू राजाओं की एक सूची भी प्रस्तुत करता है।

जहाँ तक फ़रिश्ता की *तारीख़* की संपूर्ण संरचना का संबंध है, यह ध्यान देना दिलचस्प है कि इस पुस्तक का दायरा समकालीन निज़ामुद्दीन अहमद (मृ. 1594) की *तबक़ात-ए अकबरी* से बहुत भिन्न

नहीं है, जिसका विभाजन एक प्रस्तावना (*मुक़द्दिमा*), नौ भागों (यहाँ, *तबका*) और एक उपसंहार (*ख़ातिमा*) में है। विषयवस्तु के रूप में भी, *तबकात-ए अकबरी* भारत में मुस्लिम इतिहास का समग्र विवरण प्रस्तुत करती है जो कि पहले *तबक़े* में ग़ज़नवी शासकों के साथ शुरू होकर मुल्तान सुल्तान के स्थानीय वंश पर समाप्त होती है (*तबक़ा 9*)। अपूर्ण *ख़ातिमा* फ़रिश्ता की *तारीख़* की तरह भारत के प्राकृतिक और भौगोलिक स्थिति का वर्णन है। यह ध्यान में रखते हुए कि निज़ामुद्दीन अहमद ने अपने ऐतिहासिक लेखन को मुग़ल बादशाह अकबर के लिए लिखा था जिसके नाम पर इस *तारीख़* का नाम है, स्पष्ट हो जाता है कि दोनों *तारीख़ों* ने इतिहासलेखन की ऐसी शैली का अनुसरण किया था जो भारत के इस्लामी राज्यों में 1600 तक स्थापित हो चुकी थी।

13.4.1 इतिहास की अवधारणा

फ़रिश्ता की *तारीख़* में लेखक भारत में मुस्लिम इतिहास के अपने वृत्तांत में दरबारी इतिहास पर अत्यधिक केंद्रित है। फ़रिश्ता और पूर्व-आधुनिक युग के उसके जैसे लगभग सभी इतिहासकार (यूरोपीय तथा इस्लामी दुनिया में भी) महान् शख़्सियतों अर्थात राजाओं, शाहज़ादों, अमीरों के कृत्यों को इतिहास के केंद्र में रखते थे। इसे इस संदर्भ में व्याख्यायित किया जा सकता है कि ऐतिहासिक लेखनों को सामान्यतः किसी शासक या दरबार के सदस्यों, *वज़ीर* और शाहज़ादों के लिए लिखा जाता था। इन *तारीख़ों* के पाठकों के लिए ग़ैर-अभिजात्य वर्गों, जैसे विद्या-शास्त्रियों, शिल्पकारों और किसानों, का कोई महत्व नहीं था क्योंकि उनके कृत्यों को पर्याप्त रूप से महत्वपूर्ण नहीं समझा जाता था। इस प्रकार वे याद किए जाने और दर्ज किए जाने योग्य नहीं थे। शाही परिवेश पर केंद्रित होने का दूसरा कारण फ़ारसी *तारीख़ों* का प्राथमिक उद्देश्य शिक्षा देना और मिसाल के रूप में कार्य करना था और इन्हें शाही दरबार के लोगों को शिक्षण देने तथा मनोरंजन के लिए लिखा गया था, ताकि वे अतीत से कुछ सीख सकें। जब फ़रिश्ता की कृति भारत के अतीत के मुस्लिम राजवंशों के समय की घटनाओं पर विचार करती है उसमें यह विशेषताएँ देखने को मिलती हैं और यह समकालीन पाठकों को संबोधित हैं जैसा कि नीचे दिया गया उद्धरण स्पष्ट करता है। यह प्रकरण बहमनी सुल्तान फ़िरोज़ शाह (r. 1397-1422) और उसकी प्रतिदिन आयोजित सभाओं (*मजलिस*) के विषय में है। फ़रिश्ता के अनुसार संवाद का यह स्थान सुल्तान और अमीरों के बीच अनौपचारिक वार्ता का एक खुला मंच बन गया थाः

> (दरबारी) अंदर और बाहर आ जा सकते थे, जब भी वे चाहते थे, और सभा में प्रत्येक व्यक्ति वह मंगा लेता था जो वह खाना या पीना चाहता था, और दरबार के सेवक उसे हाज़िर कर देते, और वे किसी भी बारे में बात कर सकते थे। केवल दो चीज़ों को छोड़कर, और उनमें से एक जिसके बारे में कुछ भी नहीं बोला जाना चाहिए वह था दुनियावी मामले जिन्हें दरबार की सभा के समय प्रस्तुत किया जाना होता था, और दूसरी चीज़ जिसके बारे में बात नहीं की जानी थी वह एक-दूसरे के विरुद्ध बुरे शब्द थे। एक दिन मुल्ला इशाक़ सरहिंदी, जो एक विद्वान और हँसमुख इंसान था, उसने सुल्तान से कहा कि 'दरबारियों को बिना तहज़ीब के अपने साथ बात करने देने की अनुमति सुल्तान के व्यक्तित्व के लिए उचित नहीं है और सुबुक्तगीन के पुत्र महमूद तथा उसके ज्योतिषी अबू रेहान अल-बिरूनी के बीच का वाक़या मेरे कथन की पुष्टि करता है' (...) सुल्तान फ़िरोज़ शाह मुस्कुराया और कहा कि 'इस तरह के कृत्य केवल वे बादशाह कर सकते हैं जो ज्ञान और बुद्धि का अभाव रखते हैंः खुदा ना करे कि ऐसे गुण मेरे स्वभाव में घर कर जाएँ।' और वे विद्वानजन, जिन्होंने शाहज़ादों की सेवाओं का स्वाद चखा है और जो राज-सभाओं का अनुभव रखते हैं, वे जानते हैं कि यद्यपि दावा किया गया कि सुल्तान फ़िरोज़ अपने इन गुणों से कमज़ोर पड़ जाएगा, वास्तव में वह अपने स्वभाव में प्रसिद्ध राजाओं से भी उत्कृष्ट था।
>
> **फ़रिश्ता, *तारीख़-ए इब्राहिमी*, भाग 2, पृष्ठ 323-324; फ़्लैट द्वारा अनुवादित, *द कोर्ट्स ऑफ़ डेक्कन सल्तनेत्स*, पृ. 40-41**

फ़रिश्ता ने ग़ज़नवी सुल्तान महमूद और उसके ज्योतिषी अबु-रेहान अल-बिरूनी (मृ. *c.*1050) के इस वाक़ये का उपयोग, जिसका उल्लेख मुल्ला इशाक़ सरहिंदी ने किया था, इस बारे में नियम तय करने के लिए किया है कि एक शासक और उसके दरबारियों के बीच एक आदर्श व्यवहार सामान्यतः किस प्रकार का होना चाहिए। इस क़िस्से का लब्बोलुआब सुल्तान के प्रति अल-बिरूनी का अभद्र व्यवहार है, जिसे उसने सीधे-सीधे यह जानकारी दी थी कि उसकी खगोलीय गणनाओं के अनुसार सुल्तान जिन कार्यों की योजना बना रहा है वह अवश्य ही ग़लत दिशा में ले जाएँगे। यह सुल्तान के लिए

पूरी तरह से अस्वीकार्य था क्योंकि सुल्तान को आलोचना के बजाय चापलूसी और तारीफ़ की ही आदत थी, उसने इस खगोलविद् को बंदी बना लिया और अपने निर्णय को इस प्रकार उचित ठहराया: 'यह व्यक्ति भले ही अनुमानात्मक विज्ञान में निपुण हो सकता है किंतु एक श्रेष्ठ ज्ञानी को स्वभाव की समझ भी रखनी चाहिए, बादशाह, उदाहरण के लिए, बच्चों की तरह होते हैं अतः उनसे उसी के अनुरूप बात करनी चाहिए।' और यहाँ पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सुल्तान महमूद और अल-बिरूनी का यह क़िस्सा और सुल्तान फ़िरोज़ के दरबार के खुलेपन का वाक़या एक उच्चतर उद्देश्य की पूर्ति हेतु है। ग़ज़नवी दरबार के विपरीत, जहाँ एक चिड़चिड़े शासक का उदाहरण है और जो थोड़ी भी आलोचना को सह नहीं सकता है, बहमनी सुल्तान बुद्धिमान और उत्तरदायी राजा का प्रतिनिधित्व करता है जो बनावटी-मृदुल व्यवहार के बजाय सत्य में अधिक दिलचस्पी रखता है।

इस क़िस्से का उल्लेख करते हुए इतिहासकार फ़रिश्ता का अभिप्राय शासक और इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय के दरबार से जुड़े हुए दरबारियों को दरबारी व्यवहार के स्वीकृत नियमों की शिक्षा देना है। शासक को अपने अधिकारों और दरबारियों के साथ व्यवहार में स्पष्ट होना चाहिए और दरबारियों को अपनी आलोचना को अपने तक ही सीमित रखना चाहिए यदि उनका सुल्तान इस क़िस्से के शाह फ़िरोज़ की तरह निष्कपट नहीं है। इन कहानियों के नैतिक परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट करने के लिए इतिहासकार अक्सर अपने वृत्तांतों को फ़ारसी कविता, प्रत्यक्ष संवाद और समकालीन कहावतों से समृद्ध बनाते हैं जैसे कि यह प्रकरण दर्शाता है। इतिहास की किताबों में, जैसे फ़रिश्ता की *तारीख़* में, उचित व्यवहार का संदेश एक ओर सामान्यतः सदाचरण वाले शासकों (या सामान्य रूप से, इंसानों) तथा दूसरी ओर दुष्ट और नीति-विहीन राजाओं के क़िस्सों के रूप में पेश किया जाता है। अपनी *तारीख़* में फ़रिश्ता अपने स्रोतों को सरल रूप से दोहरा भर नहीं देता है बल्कि अपने विवरण के अनुसार घटनाओं और शासकों के विषय में सूचनाओं को एकत्र करता है और उन्हें ग़ैर-भारतीय महाकाव्यों, जैसे फ़िरदौसी के *शाहनामा*, जिसे 1000 सी ई के आसपास ईरान में लिखा गया था, और हिंदू महाकाव्य *महाभारत* के वर्णनों के साथ मिश्रित कर देता है।

बोध प्रश्न-2

1) किस प्रकार फ़रिश्ता की *तारीख़* निजामुद्दीन अहमद की *तबक़ात-ए अकबरी* से मिलती-जुलती है?

....

....

....

2) इतिहास के संबंध में फ़रिश्ता का क्या विचार है?

....

....

....

3) फ़रिश्ता के मत में दरबारी आचरण के स्वीकृत व्यवहार क्या थे?

....

....

....

13.4.2 समय तथा कालक्रम

फ़रिश्ता की *तारीख़* न केवल भारत में इस्लामी राजवंशों के इतिहास को समाहित करती है बल्कि इसका एक व्यापक कालगत दायरा भी है जो पूर्व-इस्लामिक काल को भी छूता है। अपनी कृति की ठीक शुरुआत में, *मुक़द्दिमा* में, जिसका पूरा नाम *इन्ट्रोडक्शन ऑन द बिलीफ्स ऑफ द पीपुल ऑफ हिंद एंड द एकाउन्ट्स ऑफ द एपियरेंस ऑफ इस्लाम इन देअर लैंड* है, वह पूर्व-इस्लामी संस्कृत महाकाव्य *महाभारत* की ओर जाता है, जिसे संभवतः तीसरी शताब्दी बी सी ई और तीसरी शताब्दी सी ई के बीच लिखा गया था और जिसे कुछ वर्ष पहले ही, 1582 में अकबर के आदेश पर, संस्कृत से फ़ारसी में अनुवादकों के एक समूह द्वारा अनुवादित किया गया था। अनुवाद की इस परियोजना

में संस्कृत और फ़ारसी के कई विद्वान शामिल थे। *महाभारत* के इस फ़ारसी संस्करण को अकबर के द्वारा *रज़्मनामा* का नाम दिया गया था और उसके विश्वासपात्र अबुल फ़ज़ल अल्लामी ने इसकी 'प्रस्तावना' लिखी थी। मुख्यतः गद्य रूप में किए गए इस अनुवाद में आंशिक रूप से कुछ भाग का अनुवाद अबुल फ़याज़ फ़ैज़ी (मृ. 1595) द्वारा पद्य रूप में भी किया गया था। फ़ैज़ी अबुल फ़ज़ल का बड़ा भाई था जो अकबर के पुत्र सलीम, मुराद और दानियाल के शाही शिक्षक के रूप में कार्यरत था और बाद में अकबर के राज-कवि के रूप में विख्यात हुआ। यह तथा अन्य अनुवाद परियोजनाएँ इस्लाम-पूर्व भारत के इतिहास में मुग़ल दरबार की दिलचस्पी की पुष्टि करती हैं जिनके माध्यम से संस्कृत में लिखे गए ग्रंथ व्यापक मुस्लिम पाठकों को उपलब्ध हो सकें। जैसा कि फ़रिश्ता स्वयं यह पुष्टि करता है कि उसे अकबर के दरबार में किए गए *महाभारत* के फ़ारसी अनुवाद को देखने का अवसर प्राप्त हुआ था, जिसे उसने भारत के अपने विवरण की शुरुआत में रखा है और एक ऐतिहासिक स्रोत के रूप में इस्तेमाल किया है। चूँकि यह समय के संबंध में फ़रिश्ता की अवधारणा और उसकी *तारीख़* के कालक्रम की संरचना की एक गहरी समझ उपलब्ध कराता है, इसमें मौजूद सूचनाएँ दिलचस्प हैं और उन्हें, इसके एक हिस्से को, यहाँ उद्धृत किया जा रहा है। अब तक इसका कोई भी अंग्रेज़ी अनुवाद सामने नहीं आया है, जैसा कि जॉन ब्रिग्ज़ द्वारा किया गया इसका सबसे व्यापक अनुवाद, 1829 में पहली बार प्रकाशित, *मुक़द्दिमा* को छोड़ देता है और पहले *मक़ाला* के साथ शुरू होता है। फ़रिश्ता इस प्रकार लिखता हैः

> *महाभारत*, जिसमें 100,000 से भी अधिक श्लोक हैं, का मूल संस्कृत से फ़ारसी में अनुवाद अबुल फ़ज़ल,[1] शेख मुबारक के पुत्र, द्वारा जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर बादशाह के आदेश पर किया गया था। इन पंक्तियों के लेखक ने इसे एक आदर्श के रूप में उपयोग किया है। यह अज्ञात न रहे [...] , कि भारत के ऋषि विश्व की सृष्टि के विचार के संबंध में भिन्नता रखते हैं। केवल *महाभारत* में ही इसके 13 रूपों का उल्लेख है, इसमें से कोई भी पर्याप्त रूप से संतुष्टिदायक नहीं है कि उसे दूसरों से बेहतर माना जाए। हिंदू समय को चार युगों में बाँटते हैंः सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और अंततः कलियुग। उनका कहना है कि ये युग बिना किसी रुकावट के एक के बाद एक आते हैं। वर्तमान युग कलियुग है और जब इसका अंत होता है तब फिर से सतयुग शुरू होगा। इस प्रकार वे विश्व को शाश्वत मानते हैं जिसका कोई आदि और अंत नहीं है। यद्यपि कुछ ऋषियों का यह दावा है कि एक समय इस विश्व का अंत होगा और क़यामत का दिन आएगा [...]
>
> सतयुग, जिसमें ईमानदारी और सत्य का प्रचलन था और लोग 100,000 वर्षों तक जीवित रहते थे [...] , कहते हैं वह 1,728,000 सालों तक रहा। त्रेतायुग, जिसमें तीन चौथाई ही ईश्वर की आज्ञा मानते थे और मानव का जीवन 100,000 वर्ष का था, वह 1,296,000 वर्षों तक जारी रहा। द्वापरयुग, जिसमें मानवता बुराई की ओर बढ़ चुकी थी और व्यक्ति 1000 वर्ष तक जीता था, 8,64,000 वर्षों तक रहा, और अब कलियुग 4,32,000 वर्षों तक रहेगा, इस दौरान मनुष्य ईश्वर-विमुख हो चुके हैं, केवल एक चौथाई ही ईश्वर के नियम को मानते हैं और मनुष्य का जीवन केवल 100 सालों तक सीमित हो गया है [...] , हिंदू पंचांग के अनुसार वर्तमान में कलियुग के 4684 वर्ष बीत चुके हैं, यानी 1015 हिजरी (1606-07) में।
>
> **फ़रिश्ता, *तारीख़-ए इब्राहिमी*, भाग 1, पृष्ठ. 11-13; कॉनरमन का जर्मन अनुवाद, *हिस्टोरियोग्राफ़े एस सिंस्टिफ़टुंग*, पृ. 243-244**

पूर्व-इस्लामी *महाभारत* का समावेश यह दर्शाता है कि अधिकांश फ़ारसी तारीख़ों में प्रचलित आदर्श ऐतिहासिक विचार के विपरीत, उदाहरण के लिए, अब्दुल कादिर बदायुँनी (मृ. *c.*1615) की *मुन्तखब-उत तवारीख़*, जिसे फ़रिश्ता की *तारीख* से पहले, 14वीं शताब्दी के आख़िर में लिखा गया था, तारीख़ों में अधिकतर बल दिए जाने वाले तत्वों जैसे धार्मिक युद्ध (*जिहाद*), इत्यादि को इस *तारीख़* के लेखक द्वारा ग्रहण नहीं किया गया है। जैसा कि सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग चार युगों के *महाभारत* से किए गए समावेश से पता चलता है कि भारतीय उपमहाद्वीप में मुस्लिमों और ग़ैर-मुस्लिमों के बीच संबंध वास्तव में उस दृष्टिकोण से बहुत भिन्न थे जो दोनों समूहों को बिल्कुल ही अलग-अलग रखकर देखता है। इसके बजाय, जैसा कि फ़रिश्ता की कृति में नज़र आता है, इस्लाम-पूर्व ऐतिहासिक आख्यान ने हिंद-फ़ारसी *तारीख़* में 10वीं और 11वीं शताब्दियों के ग़ज़नवी वंश के मुस्लिम शासकों से पहले के सुदूर अतीत के हिस्से के रूप में स्थान बना लिया था। वास्तव में, ऐतिहासिक आख्यानों के मुस्लिम लेखक कभी-कभी हिंदू यानी ग़ैर-इस्लामी ज्ञान, जैसा कि अमीर ख़ुसरो (मृ. 1325) की कृति

[1] फ़रिश्ता गलती से *महाभारत* के फ़ारसी अनुवाद का श्रेय अबुल फ़ज़ल को देता है। अबुल फ़ज़ल द्वारा *महाभारत* के फ़ारसी अनुवाद की 'प्रस्तावना' मात्र लिखी गई थी।

नूह सिपेहर में देखने को मिलता है, की प्रशंसा भी करते हैं। अतः यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि *मुक़द्दिमा* में फ़रिश्ता विश्व तथा इसके कालचक्रों के संबंध में स्थानीय हिंदू विचारों को चित्रित करना पसंद करता है, बजाय कि अपनी *तारीख़* को ईश्वर द्वारा दुनिया की सृष्टि करने के परंपरागत इस्लामी विचार के साथ शुरू करने के, जिसका बाद में उल्लेख किया गया है।

बहरहाल, समय को चार युगों में बाँटने के इस हिंदू विश्वास के ठीक बाद वह *बाइबल* और *क़ुरान* के सृष्टि के आख्यान को प्रस्तुत करता है, इसमें वह इस्लाम के मुक्ति-दायी (salvation) इतिहास और भारत के बीच एक प्रत्यक्ष संबंध स्थापित करने में सफल होता है जब वह नूह के पुत्र हाम की संतानों की चर्चा करता है जिन्होंने अपने नामों पर कई शहरों की स्थापना की थी। हाम के पुत्र हिंद के चार पुत्र थे, जिन्होंने पूरब, बंग (बंगाल), दकन और नहरवाल की स्थापना की। दक्कन की औलादें थीं; मरहट, कन्हड और तिलंग; नहरवाल के पुत्र थे बहराइच, कुंबज और मलराज। हिंद के भाई सिंध के पुत्र थे थट्टा और मुल्तान, और इसी प्रकार यह क्रम चलता है। हमारी दिलचस्पी यहाँ दकन के तीन पुत्रों मरहट, नहरवाल और तिलंग में है, जिन्होंने दकन को आपस में बांट लिया था और इतिहासकार के शब्दों में, इनका तात्पर्य क्रमशः मराठी, कन्नड़ और तेलुगु भाषी क्षेत्रों से है 'आज ये तीनों क्षेत्रीय-समूह (भाषायी तथा भौगोलिक) दक्खन में विद्यमान हैं'। फ़रिश्ता के लिए यह वंशीय प्रतीकचित्र है जो हमें दक्खन को एक विभाजित क्षेत्र के रूप में समझने में सहायता करता है, न केवल भौगोलिक और राजनीतिक रूप से बल्कि भाषायी और सांस्कृतिक रूप से भी। हालांकि फ़रिश्ता न तो भाषायी क्षेत्रों के बीच ठोस संबंधों का संकेत करता है और न ही दक्खन की एक समरूप अवधारणा का। इसके बजाय वह *महाभारत*, फ़िरदौसी के फ़ारसी महाकाव्य *शाहनामा* और *क़ुरान* की कहानियों को आपस में गूँथकर शहरों, जैसे उसके स्वयं के गृह-नगर बीजापुर, की स्थापना का नवीन (कथात्मक) विवरण देता है। तत्पश्चात् वह पहले *मक़ाला* में आरम्भिक 11वीं शताब्दी में महमूद ग़ज़नी के शासन के साथ शुरू करते हुए मुस्लिम इतिहास लिखना जारी रखता है।

13.4.3 स्रोत

अपनी रचना के निर्माण में फ़रिश्ता द्वारा स्रोत-सामग्री का किया गया उपयोग एक ओर तो इस्लामी इतिहासलेखन के परंपरागत ढाँचे के अनुरूप है और दूसरी ओर व्यक्तिगत पसंद तथा निजी परिस्थितियों पर आधारित है। जैसा कि उसने अपनी *तारीख़* के *मुक़द्दिमा* में व्याख्या की है, अपनी युवावस्था से ही वह इतिहास में दिलचस्पी लेता था, भारत में मुस्लिम विजय और इस क्षेत्र में मौजूद रहे धर्मात्माओं पर *तारीख़* लिखने का उसका इरादा था। स्वयं उसके शब्दों में, जब वह अहमदनगर में था तब वह अपनी इस इच्छा को पूरा नहीं कर सका और वह इस तरह की किताब को लिखना शुरू नहीं कर पाया क्योंकि वहाँ उसे इस परियोजना के लिए स्रोत उपलब्ध नहीं हो सके। इस स्थिति में बदलाव आया जब 1589 में वह बीजापुर आया, जब उसके नए संरक्षक इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय, जो खुद *तारीख़* की पुस्तकों का एक अच्छा पाठक था, ने उसे इरादे को न छोड़ने के लिए कहा। बीजापुर में इस उभरते इतिहासकार को विभिन्न क्षेत्रों की पुस्तकों तक पहुँच हासिल हुई और वह प्रत्येक चीज़ को विस्तार से पढ़ने में समर्थ हुआ किंतु इसका कोई लाभ नहीं हुआः यहाँ तक कि ऊपर उल्लिखित निज़ामुद्दीन अहमद की *तबक़ात-ए अकबरी* में भी वह जानकारी उपलब्ध नहीं थी जिसकी उसे उम्मीद थी, बल्कि इनमें कई त्रुटियाँ थीं। फ़रिश्ता, अपने ग्रंथ की शुरुआत में, उल्खेख करता है कि इसी मौक़े पर उसने अपनी रचना को लिखना शुरू किया था जिसके पहले संस्करण को उसने 1606-1607 में पूरा किया था और दूसरे को 1609-10 में, अपने संरक्षणदाता सुल्तान इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय को अर्पित करते हुए। यह ऐतिहासिक प्रक्रिया फ़रिश्ता के इतिहास लेखन के दृष्टिकोण में भी नज़र आती है; प्रथम, अपने समय से पूर्व की घटनाओं तक पहुँचने के लिए वह इतिहास की पुरानी रचनाओं का संग्रह करता है। दूसरा, वह उन घटनाओं का, जिनका उसने स्वयं अनुभव किया था, सटीक क्रम प्रस्तुत करता है, और तीसरा, जिन घटनाओं को उसने प्रत्यक्ष अनुभव नहीं किया था, उनके संबंध में अन्य के कथनों को शामिल करता है।

चूँकि उसकी रचना प्रारंभिक 11वीं शताब्दी के ग़ज़नवी राजवंश से शुरू होने वाला भारत का इतिहास थी, यह स्पष्ट है कि उसकी *तारीख़* पुरानी ऐतिहासिक पुस्तकों का संकलन मात्र थी। इतिहासकार के रूप में अपनी प्रामाणिकता के समर्थन में फ़रिश्ता अपनी पुस्तक की प्रस्तावना में 35 ऐतिहासिक ग्रंथों की सूची प्रस्तुत करता है और अपनी पूरी पुस्तक में अन्य 20 को उसने उद्धृत किया है। इन इतिहास की पुस्तकों के नामों की सूची में 13वीं और 14वीं शताब्दी की, दिल्ली सल्तनत से संबंध रखने

वाली, निशाबुरी की *ताज अल-मआसिर* (1217 में लिखित), मिनहाज उद्दीन अल-जुज़्जानी की विश्व इतिहास की पुस्तक *तबक़ात-ए नासिरी* (1259-1260 के आस-पास लिखित) और बनकती की 1317-1318 के बीच लिखी गई *तारीख़-ए बनकती* शामिल हैं। अन्य ग्रंथों में भारत के बाहर सृजित सामान्य इतिहास हैं, जैसे मीर ख़्वांद की *रौज़त अल-सफ़ा*, जिसे तैमूरी हेरात में 15वीं शताब्दी के आख़िर में लिखा गया था और ख़्वांदमीर की *हबीब अल-सियार*, जिसे 1520 के दशक में लिखा गया था। फ़रिश्ता गुजरात, बंगाल, सिंध की अन्य बहुत सी स्थानीय और क्षेत्रीय गाथाओं की सूची भी देता है। उपर्युक्त रचनाओं से यह स्पष्ट है कि फ़रिश्ता भारत के राजवंशों के अपने इतिहास लेखन में विख्यात ग्रंथों के एक विशेष समूह पर निर्भर रहा था और उसने फ़ारसी के अलावा अन्य भाषाओं में लिखी गई रचनाओं पर विचार नहीं किया था। जहाँ तक ऊपर उद्धृत *महाभारत* का सवाल है वह फ़ारसी अनुवाद का, न कि महाकाव्य के संस्कृत या किसी स्थानीय/क्षेत्रीय भाषा में लिखे गए संस्करण का, उपयोग करता है। अपने विवरण को अपने समय से पहले की *तारीख़ों* पर आधारित करने के उसके दृष्टिकोण का प्रभाव उसकी *तारीख़* की संरचना पर स्पष्टतः नजर आता है, जो अंततः फ़ारसी में लिखा गया, जो उस समय इतिहास लेखन की प्रधान भाषा थी, एक परंपरागत वंशानुगत इतिहास है।

बोध प्रश्न-3

1) समय के संबंध में फ़रिश्ता का विचार क्या है?

....

....

....

2) इतिहास लेखन और स्रोतों के चयन को लेकर फ़रिश्ता का दृष्टिकोण क्या रहा है?

....

....

....

13.5 फ़रिश्ता की *तारीख़* के संबंध में यूरोपीय दृष्टिकोण

स्वयं में *तारीख़* के विश्लेषण करने के साथ ही यह देखना भी लाभदायक होगा कि इस रचना को किस प्रकार ग्रहण किया गया, जैसा कि यूरोप में ऐतिहासिक दर्शन में रुचि लेने वाले विद्वान-जनों के बीच कई दशकों तक यह सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ बना रहा। इसका इतिहास ईस्ट इंडिया कंपनी के बंगाल इन्फ़ंट्री के अधिकारी, लेटिनेंट कर्नल अलेग्ज़ैंडर डाउ (1735-1779) द्वारा इस कृति के पहले अंग्रेज़ी अनुवाद, *द हिस्ट्री ऑफ़ हिंदोस्तान; फ्रॉम द अर्लियस्ट एकाउंट ऑफ़ टाइम, टू द डेथ ऑफ़ अकबर; ट्रांसलेटेड फ्रॉम द पर्शियन ऑफ़ मुहम्मद कासिम फेरिश्ता ऑफ़ दिल्लीः टुगेदर विथ अ डिसर्टेशन कंसर्निंग द रिलीजन एंड फिलोसॉफी ऑफ़ द ब्राह्मण्स विथ एन अपेंडिक्स कंटेनिंग द हिस्ट्री ऑफ़ द मुगल अंपायर, फ्रॉम इट्स डिक्लाइन इन द रेन ऑफ मुहम्मद शॉ, टू द प्रेजेंट टाइम्स*, तक पीछे जाता है। मुस्लिम भारत का यह प्रथम बृहद इतिहास 1768 में दो भागों में प्रकाशित हुआ और इसमें फ़रिश्ता की कृति के आंशिक अनुवाद के साथ ही हिंदू रीतियों पर डाउ का विवरण भी शामिल था। सम्राट जॉर्ज तृतीय को अर्पण पंक्तियों को आरंभिक औपनिवेशिक विश्वदृष्टि के प्रकाश में समझा जा सकता हैः

> श्रीमंत, हिंदुस्तान का इतिहास, विनम्रता के साथ, राजसिंहासन के चरणों में प्रस्तुत किया जाता है। जैसा कि अब हिंदुस्तान का कोई छोटा-मोटा नगण्य हिस्सा नहीं है, जो एक तरह से ब्रिटिश साम्राज्य की परिधि में शामिल हो गया है, अतः संप्रभु सम्राट को उस देश का यह इतिहास संबोधित करना उचित ही प्रतीत होता है। हिंदुस्तान के इतिहास में, जो अब महामहिम को अर्पित है, ग्रेट ब्रिटेन के लोग अपनी परिस्थितियों से बिल्कुल विपरीत हालात देखेंगे; और, जब वे तानाशाही के अधीन मानव के उत्पीड़न का अहसास करेंगे, तब साथ ही वे आनंद से भी भर जाएँगे, अपनी प्रसन्नतापूर्ण स्वतंत्रता पर जिसका वे राजा की सरकार के अधीन उपभोग करते हैं, जो अपनी प्रजा की सुरक्षा व खुशी में वृद्धि करके स्वयं आनंद पाता है।

यह उद्धरण स्पष्ट करता है कि डाउ 1750 तथा 1760 के दशक में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी की शुरुआती विजयों की रोशनी में भारत के राजनीतिक इतिहास को जानने की आवश्यकता समझता

था। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वह अपनी किताब को नए उपनिवेश के संबंध में ज्ञान के सृजन का हिस्सा समझता था, जिसे वह मुस्लिम अर्थात् मुग़ल राजव्यवस्था का वैध उत्तराधिकारी मानता था। फ़रिश्ता के विपरीत, जो भारत में मुस्लिम शासन को स्वाभाविक तथा न्यायसंगत मानता था, डाउ ज़ोरदार ढंग से भारतीय उपमहाद्वीप में मुस्लिम शासन के विरुद्ध तर्क देता है, जिसे ग़ैर-मुस्लिम देशी जनता के लिए एक अजनबी सी चीज़ मानता है, और फ़रिश्ता पर संस्कृत के अज्ञान (और इस प्रकार गहरे ज्ञान के अभाव का) का दोष मढ़ता है। ऊपर उद्धृत किए गए *महाभारत* के उद्धरण के संदर्भ में, जो ग़ैर-मुस्लिम भारतीय परम्पराओं को समाहित करने के बौद्धिक प्रयास के रूप में समझा जाना चाहिए था, डाउ हिंदू तथा मुस्लिम दोनों की आलोचना करता है, जब वह यह कहता है:

> 'मोहम्मडनों' का ब्राह्मण धर्मों के अनुयायियों के प्रति पूर्वाग्रह शायद ही उन्हें हिंदुओं के विषय में सामान्य निष्कपटता के साथ बात करने की अनुमति देता है। वह बहुत कुछ फ़रिश्ता की भाँति ही कहता प्रतीत होता है जब वह यह तर्क रखता है कि हिंदुओं के बीच *महाबरित* [*महाभारत*] से बेहतर अधिकारिता वाला कोई इतिहास नहीं है, वह रचना एक कविता है न कि इतिहास।

भारत की यह छवि कि भारत एक ऐसा देश था जहाँ मुस्लिमों की पहली विजय से पहले कोई इतिहास अस्तित्व में नहीं था और मुस्लिम धर्मांध थे जिन्होंने मंदिरों को ध्वस्त किया और तानाशाही का प्रसार किया, डाउ के बाद भी दशकों तक कायम रही तथा इसने इंग्लैंड, फ्रांस और जर्मनी के इतिहास की दार्शनिक चर्चाओं में भारत और उसके लोगों की छवि को आकार प्रदान किया। फ़रिश्ता की *तारीख़* का डाउ के द्वारा किया गया पाठ और भारत की उसकी समझ ने कई रचनाओं को प्रभावित किया, जैसे एडवर्ड गिब्बन (1737-1794) की *द हिस्ट्री ऑफ़ द डिक्लाइन एंड फॉल ऑफ़ द रोमन एंपायर* का छठा भाग (1776 में प्रकाशित), वॉल्टेयर (1694-1778) की महान् कृति *Essai ur les moeurs et l'espril-des nations* (*ऐन एसे ऑन यूनिवर्सल हिस्ट्री, द मैनर्स, एंड स्पिरिट्स ऑफ़ नेशंज़*) के संशोधित संस्करण (प्रथम बार 1756 में प्रकाशित और 1769, 1775, तथा 1778 में संशोधित), इमैनुअल काँट (1724-1804) की 1784 में प्रकाशित *Idee zu einer allgemeinen Geschichte in weltburgerlicher Absicht* (*आइडिया फ़ॉर अ यूनिवर्सल हिस्ट्री फ़ॉर अ कॉज़्मपॉलिटन पर्पज़*)। हिंदुओं तथा मुस्लिमों के प्रति डाउ के नकारात्मक दृष्टिकोण की परिणति प्रबोधन युग के जर्मन दार्शनिक योहान गॉट्रीड हर्डर (1744-1803) के शब्दों में होती है जिसने निष्कर्ष निकाला कि हिंदुस्तान के लोग '*सती*' जैसे बर्बर रिवाज़ों में ही अज्ञानता का आनंद लेते रहते, यदि 'युद्धप्रेमी मंगोल' तथा 'धनलोलुप यूरोपियों का साहसिक' हस्तक्षेप वहाँ नहीं हुआ होता। प्रबोधन युग के कुछ प्रमुख विद्वानों के वक्तव्य दर्शाते हैं कि इतिहास का नज़रिया कभी-कभी उससे बहुत अलग होता है जो ऐतिहासिक रचना के लेखक – यहाँ फ़रिश्ता और उसकी *तारीख़* – के मन में अपनी कृति को लिखते हुए होता है।

बोध प्रश्न-4

1) फ़रिश्ता की कृति के संबंध में अलेग्ज़ैंडर डाउ का नज़रिया बताइए।

....

....

....

2) फ़रिश्ता के लेखन के संबंध में यूरोपीय नज़रिया क्या था?

....

....

....

13.6 सारांश

पहली नज़र में फरिश्ता की *तारीख़* भारत में मुस्लिम शासन की अन्य फ़ारसी *तारीख़ों* के समान ही प्रतीत होती है, जिसे भारतीय उपमहाद्वीप में सदियों पुरानी इतिहासलेखन की परम्परा के अंतर्गत रखा जा सकता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, इसके लेखक के बौद्धिक क्षितिज ने इसे आकार दिया था, जिसने ग़ैर-मुस्लिम अर्थात हिंदू परंपराओं के हिस्सों को अपनी कृति में एकीकृत किया, जब

वह चार विभिन्न युगों, सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग की चर्चा करता है जिनका उल्लेख संस्कृत महाकाव्य *महाभारत* में है। साथ ही, भारत को *बाइबल* और *कुरान* की दुनिया और इसके प्राणियों के सृष्टि-संबंधी आख्यान में स्थान देने के लिए फ़रिश्ता नूह और उसके वंशजों के परंपरागत इस्लामिक आख्यान का भी उपयोग करता है। इस कृति के अन्य पहलुओं के मामले में यह कहा जा सकता है कि फ़रिश्ता की *तारीख़* नीति-परायण शासक और वैध राजत्व का वर्णन करने में इस्लामी इतिहासलेखन के सामान्य प्रतिमानों का अनुसरण करती है, जिसके लिए वह बीजापुर के इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय के दरबार में अपने पाठकों के सम्मुख यह स्पष्ट करने के लिए कि किसे उचित दरबारी आचरण समझा जाएगा और किसे नहीं, अतीत के उदाहरणों का उल्लेख करता है। यह आश्चर्यजनक नहीं है कि इस रचना में बीजापुर की सल्तनत पर विचार *मक़ाला-3* में विस्तार से किया गया है क्योंकि इतिहास लेखन का संबंध हमेशा से सत्ता की वैधता से अधिक रहा है, बजाय कि मात्र तथ्यों के प्रस्तुतीकरण के। इस *तारीख़* के पूर्ण हो जाने के बाद भी दशकों और सदियों तक प्रबोधन युग तथा प्रारंभिक औपनिवेशिक काल में भी यह सत्य बना रहा है। अठारहवीं शताब्दी के आख़िर और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में, अंग्रेज़ी में अनुवादित भारत के शुरुआती इतिहासों में से एक के रूप में फ़रिश्ता की कृति ने अत्यंत महत्व पा लिया था, जिसने अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी और जर्मन विद्वानों के लेखनों में भारतीय उपमहाद्वीप पर व्यापक चिंतन का रास्ता तैयार किया तथा विश्व इतिहास में हिंदू और मुस्लिमों के संबंध में उनके दृष्टिकोणें को आकार दिया।

13.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें भाग 13.3

2) देखें भाग 13.3

बोध प्रश्न-2

1) देखें भाग 13.4

2) देखें उप-भाग 13.4.1

3) देखें उप-भाग 13.4.1

बोध प्रश्न-3

1) देखें उप-भाग 13.4.2

2) देखें उप-भाग 13.4.3

बोध प्रश्न-4

1) देखें भाग 13.5

2) देखें भाग 13.5

13.8 संदर्भ ग्रंथ

अहमद आसिफ़, मन्नान, (2020) *द लॉस ऑफ़ हिंदुस्तानः द इन्वेन्शन ऑफ़ इंडिया* (कैम्ब्रिज, मेसाचुसेट्सः हॉर्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

कॉनरमन, स्टेफ़न, (2002) *हिस्टोरियोग्राफ़ी एस सिंस्टिफटुंग, इंडो-परज़िश गसखिस्राइबौंग वाहरेंद देर मोगुलज़ेट* (932-1118/1526-1707) (वाइज़बाडनः रिखेर्ट).

ईटन, रिचर्ड एम., (2019) *इंडिया इन द पर्सियनेट एज, 1000-1765* (नई दिल्लीः ऐलन लेन).

फिरिश्ता, (2008-2014) *तारीख़-ए इब्राहिमी*, संपा. मुहम्मद रिज़ा नासिरी, 4 भाग (तेहरानः अंजुमन-ए आतहार वा मफ़ाख़ीर-ए फ़रहंगी).

फिरिश्ता (पुनःमुद्रित 1997, प्रथम प्रकाशित 1829) *हिस्ट्री ऑफ़ द राइज़ ऑफ़ द महोम्डन पावर इन इंडिया टिल द इयर ए.डी. 1612, ट्रैन्स्लेटेड़ फ्राम द अरिजिनल पर्सीयन ऑफ़ महोमद कासिम फ़ेरिश्ता बाय* जॉन ब्रिग्ज़, दो भाग (दिल्लीः लो प्राइस पब्लिकेशन).

फ़ीचेल, रॉय एस., (2020) *लोकल स्टेट्स इन ऐन इम्पीरीयल वर्ल्डः आयडेंटिटी, सोसायटी एंड पॉलिटिक्स इं द अर्ली मॉडर्न डेक्कन* (एडिनबर्गः एडिनबर्ग यूनिवर्सिटी प्रेस).

फ्लैट, एम्मा जे., (2019) *द कोर्ट्स ऑफ़ द डेक्कन सलतनेत्सः लिविंग वेल इन द पर्शियन कोसमोपोलिस* (कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस).

हार्डी, पीटर एस., (1960) 'फिरिश्ता', *एन्साइक्लोपीडीआ ऑफ़ इस्लाम,* द्वितीय संस्करण, भाग II, पृ. 921-923.

शेरवानी, हारून ख़ान एवं जोशी, पुरुषोत्तम, एम., (1974) *हिस्ट्री ऑफ़ मिडिवल डेक्कन (1295-1724)*, 2 भाग (हैदराबादः आंध्र प्रदेश सरकार. टेक्स्ट-बुक प्रेस).

13.9 शैक्षणिक वीडियो

फरिश्ताज़ तारीख़ एंड इट्स रेन्डीशन्स
https://www.youtube.com/watch?v=kbYeupPm_ao

इकाई 14 अबुल फ़ज़ल*

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 अबुल फ़ज़ल के दार्शनिक प्रेरणा-स्रोत

14.3 अबुल फ़ज़ल की इतिहास के संबंध में अवधारणा

14.4 अबुल फ़ज़ल का इतिहास के स्रोतों के प्रति दृष्टिकोण

14.5 अबुल फ़ज़ल के लेखन में पूर्वाग्रह

14.6 अबुल फ़ज़ल के लेखन में इतिहास के प्रति तार्किक और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण

14.7 अबुल फ़ज़ल के लेखन में समय की अवधारणा

14.8 धर्म के संबंध में अबुल फ़ज़ल के विचार

14.9 अबुल फ़ज़ल की *सुलह-ए कुल* की अवधारणा

14.10 अबुल फ़ज़ल की संप्रभुता की अवधारणा

14.11 सारांश

14.12 शब्दावली

14.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.14 संदर्भ ग्रंथ

14.15 शैक्षणिक वीडियो

14.0 उद्देश्य

यह इकाई अबुल फ़ज़ल की इतिहास-संबंधी अवधारणा और उसके ऐतिहासिक दृष्टिकोण पर विचार करती है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जानने में समर्थ होंगेः

- अबुल फ़ज़ल की इतिहास के संबंध में अवधारणा,
- इतिहास लेखन के प्रति उसका दृष्टिकोण,
- *अकबरनामा* के लेखन में अबुल फ़ज़ल द्वारा प्रयुक्त स्रोतों की प्रकृति तथा उनके पैटर्न,
- अबुल फ़ज़ल के स्वयं के पूर्वाग्रह,
- अबुल फ़ज़ल की *सुलह कुल* की अवधारणा,
- अबुल फ़ज़ल के लेखन में समय का निरूपण, और
- धर्म के संबंध में अबुल फ़ज़ल के विचार।

14.1 प्रस्तावना

अबुल फ़ज़ल (1551-1602) भारत के महानतम इतिहासकारों में से एक था, वह आधिकारिक रूप से नियुक्त एक इतिहासकार, एक विचारक था, तथापि वह एक परंपरागत क़िस्म का आधिकारिक इतिहासकार नहीं था। वह एक प्रतिभाशाली विद्वान था किंतु 'श्रेष्ठता की मनोग्रंथि से पीड़ित' था जिसने उसे अभिमानी और अहंवादी बना दिया था।

* प्रो. आभा सिंह, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

अबुल फ़ज़्ल ने शाही सेवा में *इबादतख़ाने* की स्थापना (1575) से एक वर्ष पूर्व प्रवेश पाया था। अबुल फ़ज़्ल की सर्वाधिक प्रख्यात रचना *अकबरनामा* (*c.* 1595) को अकबर द्वारा जारी 1589 के आदेश के तहत लिखा गया था। इसमें आदम से लेकर अकबर के शासनकाल के 46वें वर्ष तक की घटनाओं का विवरण है। *आईन-ए अकबरी*, जो साम्राज्य का एक सांख्यिकीय विवरण है, एक विवरणिका/गज़ेटियर के रूप में लिखा गया था, और मूलतः इसका तीसरा भाग था (बाद में आरंभिक 17वीं शताब्दी में इसे एक अलग ग्रंथ के रूप में देखा जाने लगा); मूलतः इसे *आईनहा-ए मुक़द्दस-ए शाही* के रूप में जाना जाता था और बाद के समय में आरंभिक 17वीं शताब्दी से इसे *आईन-ए अकबरी* कहा जाने लगा। उसने *मुनाजात* की रचना भी की जो अबुल फ़ज़्ल द्वारा खुदा के आह्वान पर केंद्रित है। उसने *महाभारत* के फ़ारसी अनुवाद *रज़्मनामा* की प्रस्तावना भी लिखी। अपनी इस प्रख्यात कृति के अलावा अबुल फ़ज़्ल के पत्र भी उपलब्ध हैं, जिन्हें उसकी मृत्यु के बाद संकलित किया गया था – *मुकातबात-ए अल्लामी* (उसके भतीजे अब्दुस समद द्वारा संकलित) तथा *रुक़्क़ात-ए अबुल फ़ज़्ल* (अबुल फ़ज़्ल के अन्य भतीजे नूरुद्दीन मुहम्मद द्वारा संकलित)।

अबुल फ़ज़्ल ने *अकबरनामा* को लिखने के कार्य को सात वर्षों में पूरा किया और अंततः 1598 में इसे अकबर के समक्ष प्रस्तुत किया। इस काल के दौरान उसने इसके प्रारूप को पाँच बार संशोधित किया जो इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि प्रत्येक शब्द, जिसका लेखक ने इसमें प्रयोग किया है, उसका सोच-समझ कर चयन किया गया था। अबुल फ़ज़्ल एक अभिजात्य था जो आमजनों की ज़रूरतों के हिसाब से नहीं लिख रहा था। वह स्वयं कहता है, 'मुझे भीड़ से क्या लेना है?'(निज़ामी 1982: 149)।

14.2 अबुल फ़ज़्ल के दार्शनिक प्रेरणा-स्रोत

अबुल फ़ज़्ल के विचारों पर उसकी परिस्थितियों का गंभीर प्रभाव पड़ा था। अबुल फ़ज़्ल की प्रारंभिक शिक्षा उसके पिता और अपने समय के महान् विद्वान शेख़ मुबारक के संरक्षण में हुई थी। अबुल फ़ज़्ल का परिवार **महदवी** विचारों से अत्यधिक प्रभावित था। अबुल फ़ज़्ल के पिता शेख़ मुबारक की महदवियों के साथ सद्भावना (महदवी संतों शेख़ अलाई तथा मियाँ अब्दुल्लाह नियाज़ी के साथ) ने इस परिवार को *उलमा* के कोपभाजन का शिकार बनाया। इस परिवार को भगोड़ों की तरह जीवन बिताना पड़ा तथा बीस वर्षों के लंबे अंतराल तक इस परिवार को *उलमा* द्वारा सताया जाता रहा। मख़दूम-उल मुल्क अब्दुल्लाह सुल्तानपुरी ने उन्हें प्राप्त अनुदान को ज़ब्त करने का आदेश भी दिया था। इन सबने अबुल फ़ज़्ल के मन में रूढ़िवादिता के प्रति कड़वाहट पैदा कर दी थी।

अबुल फ़ज़्ल ने अपनी दार्शनिक अंतर्दृष्टि तथा प्रेरणा विभिन्न स्रोतों और विद्वानों से प्राप्त की थी। उसकी दार्शनिक नींव के पीछे इब्न सीना (अविसीना; उसका परिधीय दर्शन), ईरान की **इशराक़ी परम्परा** (शेख़ शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी मक़तूल), इब्न अल-अरबी के विचार तथा दर्शन, इमाम ग़ज़ाली, 'राजाओं के लिए परामर्श-संबंधी ग्रंथ' ('Mirror of Princes') फ़िरदौसी का *शाहनामा*, हकीम फतउल्लाह शिराज़ी, तथा जिलानी बँधुओं के विचार थे। भारतीय परंपराओं में वह *महाभारत*, *धर्मशास्त्रों* और *कलिल वा दिम्ना* (*पंचतंत्र*) से प्रभावित था। अबुल फ़ज़्ल इब्न अल-अरबी के *वहदत-उल वुजूद* (अस्तित्व की एकता) पर विश्वास रखता था। उसने नसीरुद्दीन तूसी की *अख़लाक़-ए नासिरी* से भी बहुत कुछ ग्रहण किया था। इरफ़ान हबीब महमूद पासिख़्वानी (मृ. 1427-1428), जो **वाहिदिया/नुक़्ताविया** पंथ के संस्थापक थे, के संभावित प्रभाव को भी अबुल फ़ज़्ल के विचारों पर देखते हैं। हरबंस मुखिया (2020: 65-71) यह भी मानते हैं कि अबुल फ़ज़्ल पर संत-कवि कबीर के विचारों का गहरा प्रभाव था जिन्हें वह *मुवाहिद* (एकेश्वरवादी) कहता है।

14.3 अबुल फ़ज़्ल की इतिहास के संबंध में अवधारणा

इतिहास के संबंध में अबुल फ़ज़्ल का दृष्टिकोण अकबर की इतिहास-संबंधी अवधारणा से निर्देशित था। अकबर के भीतर स्वयं की उपलब्धियों तथा नाम को अमर बना देने की गहरी आकांक्षा थी। इस प्रकार तैमूरी परम्परा का अनुसरण करते हुए उसने उन सभी से, जो अतीत के राजनीतिक विकासक्रमों से संबंधित थे, अपने संस्मरणों को लिखने के लिए कहा। इस प्रक्रिया में गुलबदन बेग़म (*हुमायूँनामा*), बायज़िद बयात (*तज़किरा-ए हुमायूँ वा अकबर*), जौहर आफ़ताबची (*तज़किरात-उल वाक़ियात*) और अब्बास ख़ान सरवानी (*तारीख़-ए शेरशाही; तुहफ़ात-ए अकबरशाही*) ने अपने संस्मरणों की रचनाएँ

कीं। अकबर की सहस्राब्दिक परियोजना *तारीख़-ए अल्फ़ी* के संबंध में विशेष निर्देश दिए गए थे। अकबर ने इस *तारीख़* को पूरा करने का काम विद्वानों के एक समूह को सौंपा था, जिनसे *हिजरी* के बजाय *रेहलत* (*इलाही*) संवत का प्रयोग करने, भाषा को सरल रखने और सुल्तानों द्वारा सत्ता हासिल करने में परिणत होने वाली परिस्थितियों की व्याख्या करने को कहा गया था। लेकिन, इन निर्देशों में संशोधन देखने को मिलता है, जब अबुल फ़ज़ल से इतिहास लिखने को कहा गया। उसने कई विद्वानों द्वारा एक ग्रंथ तैयार करने की समस्याओं का अनुभव किया तथा यह कार्य अकेले ही अबुल फ़ज़ल को सौंप दिया गया। इसके अतिरिक्त आँकड़ों के संग्रह तथा संकलन के लिए अबुल फ़ज़ल को एक संपूर्ण सचिवालय उपलब्ध करवाया गया। अकबर, जो *हिजरी* संवत को तरज़ीह नहीं देता था, ने अबुल फ़ज़ल से इसके प्रयोग को लेकर आग्रह नहीं किया। इसके अतिरिक्त भाषा की सरलता के संबंध में भी उस पर कोई सीमा नहीं लगाई गई। दिलचस्प रूप से, अबुल फ़ज़ल स्वयं आलंकारिक शब्दाडंबर से दूर हटने का दावा करता है, हालांकि भाषा की सरलता का उसका दावा शायद ही उचित ठहरता है।

इस पृष्ठभूमि में अबुल फ़ज़ल ने अपनी महान् कृति की रचना शुरू की। *अकबरनामा* को कलमबद्ध करने के उद्देश्य पर टिप्पणी करते हुए निज़ामी (1982: 146) कहते हैं:

> विषय के प्रति अपने दृष्टिकोण के निर्धारण में अबुल फज़ल के लिए जो सर्वाधिक प्रमुख कारक था वह था कि इतिहास के उद्देश्य और दायरे तथा इतिहासकार की भूमिका के संबंध में उसके स्वामी (अकबर) का क्या विचार है ....

अबुल फ़ज़ल, 'अपने नायक (अकबर) को एक परमश्रेष्ठ इंसान तथा आदर्श राजा के रूप में प्रस्तुत करने की उत्कट इच्छा में अक्सर तर्क, तटस्थ रवैये और उचित सीमाओं को ध्यान में रखने में असफल रहता है। इसने उसके विवरण को न केवल पक्षपातपूर्ण बनाया है बल्कि कई बार यह मात्र प्रशस्ति के निम्न स्तर पर पहुँच जाता है' (सिद्दीक़ी 2018: 130)।

अबुल फ़ज़ल के समय इतिहास लेखन की मंगोल व तैमूरी, दोनों, परम्पराएँ, तथा भारतीय परम्परा प्रचलन में थीं। अबुल फ़ज़ल ने मंगोल परम्परा को अपनाया जो अपने वाक्य-विन्यास में अत्यधिक अलंकृत शैली की थी। यह अकबर के *तारीख़-ए अल्फ़ी* के संबंध में दिए गए निर्देशों के विपरीत था, जहाँ उसने भाषा की सरलता को लेकर निर्देश किया था। अक्सर ही इसका परिणाम वास्तविक विचार के अर्थ के धूमिल पड़ जाने में निकलता है।

दरबार तथा शिविरों के इर्द-गिर्द केंद्रित रहने वाला फ़ारसी इतिहास लेखन भी अबुल फ़ज़ल के लिए अपर्याप्त था, अतः उसने समान रूप से अरबी इतिहास लेखन की परम्परा का सहारा लिया, जिसमें जनता को केंद्र में रखा जाता था, तथापि अरबी इतिहास लेखन की उसके द्वारा स्वीकार्यता 'मात्र आंशिक और सीमित ही थी, जनता को इस इतिहासकार (अबुल फ़ज़ल) के अध्ययन के मनोहारी दायरे में प्रवेश अधिकार-पूर्ण रूप से नहीं मिला था, जैसा कि अरब इतिहासकारों ने किया था, बल्कि यह उसकी आवश्यकता थी क्योंकि उनके बिना अकबर की बहुमुखी गतिविधियाँ अपूर्ण तथा नीरस ही रह जातीं' (निज़ामी 1982: 153)। उसके विवरण में अपने समय के संतों के संबंध में भी विस्तृत चर्चा का अभाव है।

उसने भारतीय परम्परा की एकता और निरंतरता के लिए प्रयास किया और इसके साथ ही भारत को वैश्विक रूप से ईरान, मावराउन्नहर (Transoxiana) तथा तुर्की के साथ जोड़ने का प्रयास भी किया।

इतिहास के दायरे को विस्तृत करते हुए इसमें अपने समय की राजनीतिक-सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के विश्लेषण को भी उसके द्वारा स्थान प्रदान किया गया है।

उसकी स्वयं इतिहास और इतिहासकार के प्रति एक परिभाषित दृष्टि थी, उसके अनुसार इतिहास कालक्रम के अनुरूप घटनाओं का विवरण है और जो ऐसा करने में दक्षता रखता है वह एक इतिहासकार है। उसने इतिहास को 'दुनिया की घटनाओं को कालानुक्रम की व्यवस्था में दर्ज़ करने' के रूप में देखा (रिज़वी 1975: 225)। उसकी कृति 'भारतीय मध्यकालीन ऐतिहासिक लेखन में युगांतरकारी कृति बन गई है' (मुखिया 2017: 88)।

बोध प्रश्न-1

1) वे कौन सी परिस्थितियाँ थीं जिनका अबुल फ़ज़ल के विचारों को आकार देने में गहरा प्रभाव पड़ा था?

....

....

....

2) अबुल फ़ज़ल की मुख्य कृतियों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

3) अबुल फ़ज़ल की इतिहास-संबंधी अवधारणा के संबंध में संक्षेप में बताइए।

....

....

....

14.4 अबुल फ़ज़ल का इतिहास के स्रोतों के प्रति दृष्टिकोण

अबुल फ़ज़ल को आँकड़ों के संग्रह तथा उचित जाँच-परख के बाद सांख्यिकीय आँकड़ों के सतर्कतापूर्ण और श्रमसाध्य उपयोग के क्षेत्र में अग्रणी माना जाता है। उसने तथ्यों के संग्रह के लिए नई प्रकार की पद्धति को अपनाया। उसकी *आईन* इस प्रकार के सांख्यिकीय आँकड़ों को प्रस्तुत करने के संदर्भ में उच्च्य स्थान रखती है। उसने विस्तृत रूप से आधिकारिक दस्तावेज़ों के इस्तेमाल के साथ ही मौखिक विवरणों को भी समाहित किया है। इस कार्य के लिए, जैसा कि बायज़ीद बयात दर्ज करता है, उसे लिपिकों (लेखकों) का एक पूरा सचिवालय उपलब्ध करवाया गया था। उसने घटनाओं को कालक्रम के अनुरूप व्यवस्थित करने और उनके भौगोलिक संदर्भ में अत्यधिक सावधानी बरती थी, और '12 *सूबों* का उसका विवरण' प्रत्येक *सूबे* (प्रांत) के संबंध में प्रशासनिक और राजस्व-संबंधी जानकारी का विस्तृत वर्णन पेश करता है। यह एक ऐसा प्रशासनिक दस्तावेज़ है जिसमें साम्राज्य की भौगोलिक और राजस्व-संबंधी जानकारियां दी गई हैं। लेकिन, *आईन* मात्र आँकड़ों का संग्रह है और संस्थानों के क्रमिक विकास पर दृष्टिपात करने में यह असफल रही है। उसकी *आईन* अक्सर एक 'आदर्श' चित्रण प्रस्तुत करती है, बजाय कि प्रशासनिक संस्थानों के 'वास्तविक' कार्य संचालन के विषय में बताने के। 'इन जानकारियों को किसी रेलवे समय-सारणी या किसी विभागीय प्रतिवेदन के रूप में पढ़ा जा सकता है जिसमें उस सबका अभाव है जो हमें लोगों की वास्तविक परिस्थितियों के विषय में बता सकता है तथा उनके जीवन के रूपों, उद्देश्य तथा अर्थ के संबंध में किसी प्रकार की कोई अंतर्दृष्टि प्रदान कर सकता है' (सिद्दीकी 2018: 148)। इसमें आमजनों के कृत्यों, विश्वासों, सामाजिक आदतों तथा व्यवहारों और अंधविश्वासों के विवरण का भी अभाव है। इस प्रकार वह समाज की कथा प्रस्तुत करने में असफल रहता है, इसके बजाय वह इसे मात्र 'अकबर की कथा' के रूप में बदल देता है।

अबुल फ़ज़ल ने 'मुश्किल से ही उन स्रोतों का उल्लेख किया है जिनसे उसने किसी विशेष जानकारी को ग्रहण किया है' (मुखिया 2017: 66)। इसी प्रकार का आरोप उसके अंग्रेज़ी अनुवादक जैरेट ने लगाया है कि वह अन्य लेखकों से शब्दशः विवरण ग्रहण करते हुए भी शायद ही कभी उनके उद्धरणों को देता है, बिना किसी भय के और चोरी करने के आरोप के प्रति लापरवाह रहते हुए' (मुखिया 2017: 68 से उद्धृत)। यहाँ जैरेट अबुल फ़ज़ल पर *आईन* के तीसरे भाग में *अल-बिरूनी* के ग्रंथ के रशीदउद्दीन द्वारा किए गए फ़ारसी अनुवाद से नकल करने का आरोप लगाता है। इसी प्रकार अबुल फ़ज़ल ने हिंदू दर्शन तथा रीतियों के संबंध में विश्वनाथ कविराज के *साहित्य दर्पण* तथा *मनुस्मृति* से भी नकलें उतारी हैं। ऐसे ही *सरकार* काबुल के संबंध में उसका खंड अधिकांशतः बाबर के विवरण से लिया गया है (मुखिया 2017: 68)। उसने हुमायूँ के शासनकाल के संबंध में भी जौहर आफ़ताबची (*तज़किरात-उल वाक़ियात*) और बायज़ीद बयात (*तज़किरा-ए हुमायूँ वा अकबर*) से विस्तृत उद्धरणों

को शामिल किया है। कई बार उसने आधिकारिक दस्तावेज़ों के साथ छेड़छाड़ भी की है, उनमें से कुछ शब्दों को हटाकर या जोड़कर। अबुल फ़ज़ल द्वारा खुरासान के *सूबेदार* के लिए शाह तहमस्प के *फ़रमान* के संदर्भ में, सर्वप्रथम वह ईरानी शाह द्वारा अपने पिता को दी गई जन्नत आशियानी की उपाधि को छोड़ देता है और बाद में ऐसे तीन व्यक्तियों के नाम उसमें जोड़ देता है जो हुमायूँ के मनोरंजन के लिए उससे मिले थे। इसके अतिरिक्त, उसने अपने ग्रंथ में *महज़र* के प्रारूप को शामिल नहीं किया है जिसे स्वयं उसके पिता शेख़ मुबारक ने तैयार किया था। इसी प्रकार उसने अपने अंतिम प्रारूप से टोडरमल की विज्ञप्ति (Memorandum) को हटा दिया था और उसका केवल सार मात्र ही प्रस्तुत किया है।

14.5 अबुल फ़ज़ल के लेखन में पूर्वाग्रह

शर्मा (1948: 44) तर्क देते हैं कि, 'अबुल फ़ज़ल अकबर को प्रभावित करना तो दूर, संभवतः स्वयं अकबर के आदर्शवाद को आत्मसात कर, उसके यथार्थकरण में स्वयं एक युक्ति बन गया था।' अबुल फ़ज़ल के ऐतिहासिक दृष्टिकोण में एक मुख्य कारक अकबर की पसंद या नापसंद थी। इस प्रकार उसका विवरण पूरी तरह से अकबर के व्यक्तित्व के चारों ओर घूमता है जो 'अपनी संपूर्णता में मौलिक तो है किंतु कष्टपूर्ण रूप से अवास्तविक है' (निज़ामी 1982: 150)। उसने अकबर को एक 'बादशाह-पैगंबर' के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया, जिसे 'आध्यात्मिक महानता' से नवाज़ा गया था। उसने अकबर की देवत्व से निकटता को प्रस्तुत किया। उसके द्वारा इलाही संवत की घोषणा एक 'दैवीय अभिप्रेरणा' थी। इस प्रक्रिया में वह, जो *उलमा* तथा धार्मिक अंधविश्वासों के प्रति आलोचक था, स्वयं इसी प्रकार की तुलनाओं में फँस गया: वह अकबर के जन्म का वर्णन करते समय मरियम मकानी की 'चमकती भौहों' से निकलते रहस्यमयी प्रकाश की चर्चा करता है। वह यह भी जानकारी देता है कि ज्योतिषियों द्वारा हमीदा बानो को अपने प्रसव में कुछ विलंब करने की सलाह दी गई थी। या, वह यह वर्णन करता है कि 'महामहिम अपनी श्रेष्ठ स्मृति के प्रताप से एक वर्ष की उम्र से ही अपने जीवन की समस्त घटनाओं को विस्तार और संपूर्णता में याद रखते हैं' (निज़ामी 1982: 151)। अबुल फ़ज़ल वर्णन करता है कि 'अकबर के व्यक्तित्व के चमत्कार तथा भाग्य से' गुजरात में बाढ़ग्रस्त महेंद्री नदी पार करने योग्य बन गई।

अक्सर जब अबुल फ़ज़ल अकबर के कुछ कृत्यों का बचाव करना मुश्किल पाता है तब वह अपने शब्दों की दार्शनिक कलाबाज़ी के आवरण में उन्हें ढकने का प्रयास करता है। माहम अनगा के द्वारा अधम ख़ान के कब्ज़े में बाज़ बहादुर के हरम की दो लड़कियों की हत्या का अकबर द्वारा मौन समर्थन के वर्णन के तुरंत बाद ही वह महामहिम की दयावान प्रकृति की प्रशंसा से उसे ढक देता है। इसी प्रकार *महज़र*, जो एक महत्वपूर्ण घोषणा थी, का उल्लेख उसके द्वारा संक्षेप में ही किया गया है, इस दस्तावेज़ का पूरा पाठ केवल बदायूँनी के ग्रंथ से ही जाना जा सकता है। 'अपनी विषय-वस्तु पर विचार का उसका रवैया अत्यंत आत्मनिष्ठ है बजाय कि वस्तुनिष्ठ होने के। उसके द्वारा प्रयुक्त पदबंधों (phrases) तथा विशेषणों और वाक्यों का उसका विन्यास किसी खास घटना या स्थिति के संबंध में उसके स्वयं के आकलन और मूल्यांकन के ही इर्द-गिर्द रचा गया है' (सिद्दीकी 2018: 144)।

बादशाह उसके लेखन के इतना अधिक केंद्र में है कि सभी कुछ अच्छा उसी से उत्पन्न होता है और इस प्रक्रिया में उसके समय के कुछ महान् व्यक्तियों, जैसे टोडरमल और शाह मंसूर, के कार्य पूरी तरह से उपेक्षित रह जाते हैं।

अबुल फ़ज़ल अकबर के प्रति बिना शर्त निष्ठा रखता था। निज़ामी (1982: 156) कहते हैं कि इस प्रक्रिया में अबुल फ़ज़ल के '*अकबरनामा* में सरकारी प्रकाशन वाली समस्त ख़ामियाँ हैं ... यह अकबर के चरित्र को अलंकृत करता है और उसके शत्रुओं को स्याह रंग में रंगता है। शुरुआत से लेकर अंत तक यह अंतहीन चापलूसी से भरा हुआ है।' कई बार इसका परिणाम तथ्यों के विरूपण में निकलता है, उसने शेरशाह को मात्र एक अफ़ग़ान विद्रोही के रूप में पेश किया है, उसकी उपलब्धियों को छोटा करके दिखाया गया है और हमेशा उसे शेर ख़ान के रूप में संबोधित किया गया है; यूसुफ़ज़इयों के विरुद्ध बीरबल की सेना की जनक्षति को भी उसने ग़लत ढंग से दर्ज किया है; इसी प्रकार 1594-1595 की महामारी और अकाल को कम करके आँका गया है; वह *करोड़ियों* की नियुक्ति और *जागीर* भूमि को *ख़ालिसा* में बदलने के अकबर के प्रयोग की विफलता का वर्णन नहीं करता है। मुग़लों

के विरुद्ध हुए उनके संघर्षों के सिलसिले में उसके वृत्तांत में राजपूतों और अफ़ग़ानों के पक्ष अनुपस्थित मिलते हैं।

14.6 अबुल फ़ज़ल के लेखन में इतिहास के प्रति तार्किक और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण

अबुल फ़ज़ल का तार्किक दृष्टिकोण उसके द्वारा परंपरागत इस्लामी इतिहास लेखन से हटने में देखा जा सकता है। यद्यपि वह अपने ग्रंथ की शुरुआत अल्लाह की प्रशंसा से करता है, किंतु अन्य इस्लामी इतिहासकारों की तरह वह पैग़ंबर मुहम्मद तथा ख़लीफ़ा का संदर्भ नहीं देता है, इसके बजाय वह आदम का उल्लेख करता है। उसके अनुसार आदम और अकबर के बीच 52 पीढ़ियाँ गुज़री थीं, हालांकि वह केवल 26 को दर्ज करता है। इस प्रकार वह अकबर को एक इस्लामी शासक की तरह नहीं, बल्कि मानवता के शासक के रूप में पेश करता है। उसका वर्णन मानवता के जन्म (आदम) से शुरू होता है और उसके वर्णन में अकबर 'मानवता' के 'चरम' के रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

अबुल फ़ज़ल इस्लाम धर्म को व्यक्त करने के लिए *अहमदी केश* (मुहम्मद का पंथ) शब्द का भी प्रयोग करता है, उसके लिए, 'इस्लाम संस्कृति का एकमात्र स्रोत नहीं था और धर्म के अलावा, चाहे वह इस्लाम हो या अन्य, मानव-विचार और सभ्यता में योगदान देने वाले और भी अन्य धर्मनिरपेक्ष स्रोत थे' (मुखिया 2017: 87)। अबुल फ़ज़ल दृढ़तापूर्वक *तक़लीद* (परम्परा) को खारिज करता है। उसके लेखन में अनवरत रूप से तर्क की दलील नज़र आती है। वह अपने समय की यथार्थ भावना को पकड़ पाने में असफल भले ही रहा हो, किंतु 'उसके अलावा, कोई भी ऐसा मध्यकालीन इतिहासकार नहीं है जो इतिहास के प्रति तार्किक और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण का दावा कर सके' (सिद्दीक़ी 2018: 130)। उसने स्वयं को पूरी तरह से 'मुस्लिम शासकों की उपलब्धियों' के वर्णन से अलग कर लिया था और न ही 'अतीत की इस्लामी शक्तियों से कोई संबंध स्थापित करने का' प्रयास किया; उसके लिए मुग़ल साम्राज्य एक 'हिंदुस्तानी साम्राज्य' था। इसमें साम्राज्यिक योद्धाओं को *मुजाहिदीन-ए इस्लाम* या *ग़ाज़ियान-ए इस्लाम* के रूप में संबोधित नहीं किया गया था, बल्कि *मुजाहिदीन-ए इक़बाल* और *ग़ाज़ियान-ए दौलत* पुकारा गया था।

अबुल फ़ज़ल तर्क (*अक़्ल, माकूलियत*) को *तक़लीद* (परम्परा) के ऊपर तरज़ीह देता है। अपनी *मुनाजात* में अबुल फ़ज़ल ईश्वर से याचना करता है, 'उन्हें ज्ञान दो जो *तक़लीद* में क़ैद हैं, ऐसे अंधकार में डूबे लोग जो अपनी दृष्टि खो चुके हैं कि वे सत्य की राह (*राह-ए हक़*) देख सकें', 'मेरे हृदय को *तहक़ीक़* से बाँधो; मुझे *तक़लीद* की क़ैद से मुक्त रखो' (रिज़्वी, मुखिया 2020: 61 में उद्धृत)। अबुल फ़ज़ल अकबर को यह कहते हुए उद्धृत करता है:

> तर्क के अनुसरण (*अक़्ल पज़ोही*) का विषय और परंपरावाद को नकारना अत्यंत स्पष्ट है कि इसे मेरी पुष्टि की आवश्यकता नहीं है। अगर परम्परा (*तक़लीद*) को इतना ही श्रेष्ठ माना जाता तो सभी पैग़ंबरों ने पुरानी रीतियों का ही अनुकरण किया होता। **हबीब 1998: 335**

अबुल फ़ज़ल में तर्क तथा धर्म के बीच द्वैधाभास देखने को मिलता है, मुखिया कहते हैं कि अबुल फ़ज़ल का तर्क सार्वभौमिक ईश्वर बनाम पंथीय ईश्वर; सार्वभौमिक धार्मिकता बनाम पंथीय धर्मों में अंतर्बद्ध था। '*सुलह-ए कुल* इस तार्किकता का निचोड़ था' (मुखिया 2020: 60)।

परिस्थितियों ने अबुल फ़ज़ल को एक बौद्धिक विद्रोही में बदल दिया था, वह बारंबार बौद्धिक स्वतंत्रता के लिए प्रयासरत रहता था, अबुल फ़ज़ल के 'मूलगामी तार्किक दृष्टिकोण की बाद के इतिहासकारों द्वारा प्रशंसा की गई है किंतु उसके बाद की कुछ शताब्दियों में उसे स्वीकारने वाले कुछ ही थे' (मुखिया 'टाइम': 14)।

बोध प्रश्न-2

1) अपनी महान् कृति *अकबरनामा* की रचना में अबुल फ़ज़ल द्वारा किस प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया था?

   ....

....

....

2) क्या आप इस बात से सहमत हैं कि अबुल फ़ज़ल का *अकबरनामा* पूर्वाग्रहों से भरा हुआ है?

....

....

....

3) किस सीमा तक अबुल फ़ज़ल को एक वास्तविक धर्मनिरपेक्ष इतिहासकार कहा जा सकता है?

....

....

....

14.7 अबुल फ़ज़ल के लेखन में समय की अवधारणा

इस्लामी विद्वानों के लिए लगभग समान रूप से हिजरी संवत् का समान महत्व रहा है, उनका यह मानना है कि हिज्र की शुरुआत अज्ञानता (*जहालियत*) के अंत का प्रतीक है और नए युग की शुरुआत इस्लाम की रोशनी में हुई थी। लेकिन अबुल फ़ज़ल भिन्न ऐतिहासिक समय के साथ काम करता है, उसका ऐतिहासिक समय आदम से अविरल प्रवाहित होता है। इस्लामी धर्म-विज्ञान में समय 'शाश्वत' है इसके साथ ही इस्लाम में आदम से लेकर क़यामत के दिन तक गतिमान रहने वाले रैखिक समय (linear time) की ईसाई अवधारणा को भी अपनाया गया है, मुहम्मद के समय तक पैगंबरों के चक्रीय रूप से आगमन की संकल्पना के साथ। हालांकि हिजरी संवत ऐतिहासिक समय की शुरुआत करता है। लगभग सभी इस्लामी इतिहासों को हिजरी संवत में दर्ज किया गया है। तथापि अबुल फ़ज़ल समय की कई अवधारणाओं को स्वीकार करता है। उसके अनुसार, 'यह शत्रुओं के लिए आनंद और प्रियजनों के लिए पीड़ा के दिन के साथ शुरू होता है' (मुखिया 'टाइम': 7)। उसने इलाही संवत के प्रयोग को स्वीकार किया है जिसे फ़तउल्लाह शिराज़ी द्वारा अकबर के 28वें राज्य-वर्ष में गढ़ा गया था किंतु इसका प्रयोग अबुल फ़ज़ल द्वारा अकबर के राज्य काल की शुरुआत से ही किया गया था।

अबुल फ़ज़ल के समय के विचार के संबंध में एक अन्य महत्वपूर्ण बिंदु यह है कि उसने विश्व की घटनाओं को उनके कालक्रम में एक ठोस समय रेखा पर निश्चित किया है। उसके लिए, कश्मीर में 4109 वर्ष, 11 महीने और 9 दिनों तक 191 शासकों ने शासन किया। कश्मीर में अकबर के प्रवास को सटीक संख्या में, अर्थात, 3 महीने और 29 दिन के रूप में दिखाया गया है और इसी तरह *अकबरनामा* इस प्रकार की सटीक समय-रेखा के उदाहरणों से भरा है। इस प्रक्रिया में यद्यपि वह कभी-कभी मिथकीय समय को ऐतिहासिक समय के साथ मिला देता है। *महाभारत* का समय-काल हिंदू समय-अवधारणा के आधार पर उसके द्वारा सटीक तिथियों के रूप में परिभाषित किया गया है, अकबर के 40वें राज्य-वर्ष से 2355 वर्ष, 5 महीने और 27 दिन पहले इसके समय की उसके द्वारा गणना की गई है।

14.8 धर्म के संबंध में अबुल फ़ज़ल के विचार

अकबर के प्रति अबुल फ़ज़ल की 'श्रद्धा ने उसे अकबर के धार्मिक विचारों का अनुयायी बनाया होगा।' अबुल फ़ज़ल ने धर्म को राजनीति से मिलाने का प्रयास किया है। उसके द्वारा '*फ़र्र-ए इज़दी* (दैवीय प्रकाश) के विचार का प्रतिपादन राजा को ईश्वर के करीब लाता है। इस प्रकार यद्यपि संप्रभु शासक किसी धर्म का उत्पाद नहीं था, किंतु उसके पास ईश्वर से प्राप्त अधिकारिता थी' (हबीब 1998: 333)।

'अबुल फ़ज़ल एक प्रश्न का उत्तर देना... चाहता था... भारत में विभिन्न धर्मों के बीच झगड़ों तथा ग़लतफ़हमियों के क्या कारण हैं?' (निज़ामी 1982: 147)। भारत के धर्मों के खंड में वह इसका उत्तर इस प्रकार देता है: क) भाषाओं की विविधता; ख) लम्बी दूरियाँ; ग) चिंतन के प्रति लोगों का 'आलस्य'; घ) रीतियों के प्रति निष्ठा; ङ) वैमनस्य तथा उत्पीड़न। अबुल फ़ज़ल का विश्वास था कि यह शासकों की उदासीनता थी जो इसके लिए ज़िम्मेदार थी।

जब अकबर के द्वारा इलाही संवत की शुरुआत को आलोचना झेलनी पड़ी तब 'अबुल फ़ज़ल ने अज्ञानी लोगों की ''अल्पदृष्टि'' पर क्षोभ प्रकट किया था जो संवत के चलन को धर्म से अलग न हो सकने वाला समझते थे' (निज़ामी 1982: 152)। लेकिन, जहाँ वह सभी से धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण के अनुसरण की आशा करता था, वहीं उसने बादशाह को धर्मपरायण व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया था।

अबुल फ़ज़ल राजा का सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्य सभी धर्मों का समान आदर मानता है। वह टिप्पणी करता है, 'वह (बादशाह) शाही प्रतिष्ठा का हक़दार नहीं होगा यदि वह मानवता की सभी परिस्थितियों और सभी धर्मों के पंथों को अपने अनुग्रह हेतु एकसमान दृष्टि से नहीं देखता है, और उसे कुछ लोगों के साथ मातृवत् व्यवहार तथा अन्य के साथ सौतेली माँ जैसा व्यवहार नहीं करना चाहिए' (शर्मा 1948: 46)।

उसका यह मानना था कि बिना हिंदू साहित्य, दर्शन तथा धर्म को समझे समकालीन राजनीतिक तथा सांस्कृतिक विकासक्रमों को समझना मुश्किल होगा। *आईन-ए अकबरी* में भारतीय दर्शन तथा धर्म पर अलग से एक पूरा खंड रखने का यही मुख्य कारण था। यद्यपि, इस संबंध में उसने अल-बिरूनी से बहुत कुछ ग्रहण किया था।

जिस ईश्वर का वह आह्वान करता है वह कोई 'सीमित' ईश्वर नहीं है। वह उनका उपहास करता है जो उपासना के लिए मंदिर तथा मस्जिद में जाते हैं तथा उपासना स्थलों का निर्माण करते हैं।

14.9 अबुल फ़ज़ल का *सुलह-ए कुल* की अवधारणा

अबुल फ़ज़ल का अकबर के प्रति विशिष्ट पक्षपात उसके समस्त लेखन में प्रकट होता है। तथापि, जहाँ उसने अकबर को मानवता तथा करुणा के व्यापक परिप्रेक्ष्य में ऊँचा उठाने में दक्षता दिखाई है वह है उसका 'निरपेक्ष शांति' (*सुलह-ए कुल*) का विचार। इब्न अल-अरबी के राजनीतिक दर्शन का अनुसरण करते हुए और इसे मुस्लिमों के लिए उच्चतर श्रेष्ठता तथा सुख के लिए रहस्यवादी (सूफ़ी) विचारधारा से मिलाते हुए, अबुल फ़ज़ल ने 'सबके लिए सुख' (happiness of all) की वकालत की थी। अबुल फ़ज़ल वैराग्य/संन्यास को दया/मानवता से नीचे रखता है, और ज़ोर देता है कि 'वैराग्य/संन्यास केवल उसका लाभ करता है जो इसका अभ्यास करता है लेकिन सेवा के माध्यम से व्यक्ति बड़ी संख्या में लोगों का उद्धार कर पाता है' (रिज़वी 1975: 372)। अबुल फ़ज़ल के मत में, 'शासक के लिए, *सुलह-ए कुल* का तात्पर्य सभी धर्मों तथा अन्य भिन्नताओं के प्रति सहिष्णुता की नीति से था' (हबीब 1998: 334)।

अबुल फ़ज़ल अन्य इस्लामी लेखकों के इस्लाम (आस्था) बनाम कुफ़्र (विधर्म) के विचार के खिलाफ़ था। इसके बजाय उसकी विचारधारा सामंजस्य तथा निरपेक्ष शांति (*सुलह-ए कुल*) पर आधारित थी। अबुल फ़ज़ल ने खुले रूप से घोषणा की थी, 'इस आलम के मालिक (अकबर) *सुलह कुल* पर आधारित नियमों से शासन करते हैं'।

अबुल फ़ज़ल कहता है, 'सत्य (हक्क़) की खोज के साथ इस दुनिया के मालिक (अकबर) ने *सुलह-ए कुल* की चमक से अपने समय के अंधकार को दूर कर दिया है तथा मानवता के सभी पंथ परस्पर वैमनस्य की भावना से दूर होकर सामंजस्य के साथ रहते हैं' (मुखिया 2020: 57)।

14.10 अबुल फ़ज़ल की संप्रभुता की अवधारणा

अबुल फ़ज़ल राजा के ईश्वर की छाया (*ज़िल अल-अल्लाह*) होने के परम्परागत विचार से *फ़र्र-ए ईज़दी* (ईश्वर से प्रकट हुआ दैवीय प्रकाश) की ओर जाता है। वह टिप्पणी करता है, 'राज्याधिकार ईश्वर से निकलता हुआ प्रकाश है, सूर्य से निकली हुई एक किरण है, जो दुनिया को प्रकाशमान करती है' (शर्मा 1948: 44)।

उसके लिए राजत्व कोई आवश्यक बुराई नहीं है, इसके बजाय उसका मानना था कि 'राज्याधिकार से उच्चतर कोई प्रतिष्ठा नहीं है'। उसके लिए *पादशाह* 'स्थायित्व तथा अधिकार' का स्वामी है (*पाद* =स्थायित्व तथा अधिकार; *शाह*=स्वामी)। नसीरुद्दीन तूसी की तरह, जो सदाचार और अनाचार वाली सरकारों/शासनों के विषय में बात करता है, अबुल फ़ज़ल भी सच्चे और स्वार्थमुक्त शासकों का पक्ष लेता है। अबुल फ़ज़ल ने *इंसान-ए कामिल* के दर्शन की वकालत की और उसके लिए अकबर

न केवल अपने उदार स्वभाव के कारण, बल्कि उस पर दैवीय प्रकाश की अनुकम्पा के कारण भी एक परमश्रेष्ठ इंसान था। अकबर की पूर्वज परम्परा को मिथकीय मंगोल पूर्वज अलान कुआ (अलंकुआवा), जो 'प्रकाश-पुंज' के हस्तक्षेप से गर्भ में आए थे, के साथ जोड़ते हुए, इस प्रकार वह शाही सत्ता के दैवीय आधार का औचित्य पेश करता है। अबुल फ़ज़ल का *इंसान-ए कामिल* का विचार सीधे तौर पर इब्न अल-अरबी से लिया गया है। यद्यपि, जहाँ इब्न अल-अरबी के लिए *इंसान-ए कामिल* पैग़म्बर मुहम्मद थे, अबुल फ़ज़ल के लिए वह अकबर था।

अबुल फ़ज़ल, निज़ाम-उल मुल्क तूसी तथा ग़ज़ाली की तरह ही, न्याय को सर्वप्रमुख गुण मानता है। नसीरुद्दीन तूसी की *अख़लाक-ए नासिरी* 'सार्वभौमिक न्याय' के सिद्धांत पर भी बल देती है। वह इस पर बल देता है कि राजा को यह देखना चाहिए कि 'उसके राज्य के भीतर कोई अन्याय न होने पाए'।

अबुल फ़ज़ल कहता है 'राजत्व ईश्वर का उपहार है ... और इस उच्च प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के बाद भी यदि वह सर्वकालिक निरपेक्ष शांति (*सुलह-ए कुल*) की स्थापना न करे और मानवता के सभी समूहों तथा सभी धर्म-पंथों को समान कृपा-दृष्टि और उदारता से न देखे ... तो वह इस उच्चतर प्रतिष्ठा के योग्य न होगा' (मुखिया 2020: 58)।

अबुल फ़ज़ल 'कल्याणकारी राज्य' की धारणा में विश्वास करता हुआ भी प्रतीत होता है, जिसमें हर किसी का बराबरी का हिस्सा हो तथा जीवन यापन के लिए पर्याप्त रोजगार हों। 'उसे विभिन्न वर्गों की आय तथा व्यय पर बारीकी से नज़र रखनी चाहिए, और परिष्कृत निगरानी के साथ, जो उसके प्रशासन को सम्मानित आभा में दर्शाए। अमीरों को जितना उनके उपभोग के लिए आवश्यक है उससे अधिक नहीं लेना चाहिए ... बेकार बैठे लोगों को उसे किसी प्रकार की दस्तकारी में लगाना चाहिए ... और नागरिकों को परस्पर सहयोग के संकल्प में जोड़ना चाहिए, और उन्हें आपसी सुख-दुःख में समान भागीदारी की डोर में बांध देना चाहिए' (शर्मा 1948: 48)।

बोध प्रश्न-3

1) समय के संबंध में अबुल फ़ज़ल की अवधारणा का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

2) भारत के धर्मों के प्रति अबुल फ़ज़ल का विश्लेषण तथा धर्म के प्रति उसका दृष्टिकोण क्या था?

....

....

....

3) अबुल फ़ज़ल की *सुलह-ए कुल* की अवधारणा क्या है? क्या आप इससे सहमत हैं कि *सुलह-ए कुल* के माध्यम से अबुल फ़ज़ल अकबर को 'मानवतावादी' के रूप में पेश करने का प्रयास कर रहा था?

....

....

....

14.11 सारांश

अबुल फ़ज़ल अपने समय के महानतम इतिहासकारों में से एक था। उसने इतिहास लेखन की नई तकनीकों को ईजाद किया जिसमें फ़ारसी, अरबी और भारतीय दृष्टिकोणें का मिश्रण था। उसकी *अकबरनामा* को उस काल में रचित सर्वाधिक धर्मनिरपेक्ष इतिहास कहा जा सकता है। यद्यपि अकबर के प्रति उसकी व्यक्तिगत श्रद्धा और अकबर को 'परमश्रेष्ठ इंसान' (*इंसान-ए कामिल*) के रूप में पेश करने के निश्चय के कारण उसकी रचना सामान्यतः एक प्रशस्ति/स्तुतिगान के रूप में प्रतीत होती है। इस प्रक्रिया में, या तो उसने कुछ तथ्यों के महत्व को कम कर दिया या ऐसे तथ्यों को छोड़ दिया जो अकबर को 'श्रेष्ठतम बादशाह' के रूप में पेश करने की योजना से मेल नहीं खाते थे। अकबर

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

तथा उसकी उपलब्धियों पर अत्यधिक केंद्रित रहने के कारण वह समाज का समग्र चित्र निरूपित करने में असफल रहा है, या कहें कि वह 'अपने युग की यथार्थ भावना' को पकड़ पाने में असफल रहा है।

14.12 शब्दावली

महदवी	इस्लामी सहस्राब्दिक/मसीहाई मत। मुस्लिम मसीहा को *महदी* (मार्गदर्शक) कहा जाता है। कुछ सुन्नी परम्पराओं में पैग़म्बर के उत्तराधिकारी ख़लीफ़ाओं को भी *महियिन* कहा गया है। तब से *महदी* होने के दावे की परम्परा चलती रही है। फ़िरोज़ शाह तुग़लक़ के शासनकाल के दौरान (1351-1388) रुक्न ने स्वयं को *महदी* घोषित किया किंतु उसका त्रासद अंत हुआ। 1495-96 में अपनी मक्का यात्रा के दौरान सैय्यद मुहम्मद जौनपुरी ने स्वयं को *महदी* घोषित किया। इसके कारण उसे *उलमा* का व्यापक प्रतिरोध झेलना पड़ा। लेकिन, अकबर ने महदवियों को पूरी स्वतंत्रता दे रखी थी। महदवी यह मानते थे कि अल्लाह ने सैय्यद मुहम्मद जौनपुरी को इस्लाम को इसके मौलिक शुद्ध रूप में स्थापित करने के लिए भेजा है
वाहिदिया/नुक़्ताविया	हुरूफ़ी आंदोलन की एक शाखा के रूप में नुक़्तावी आंदोलन महमूद पासिख़ानी द्वारा स्थापित किया गया था। उसने स्वयं को 1397 में एक *महदी* घोषित किया। उसने हुरूफ़ी मत से बहुत कुछ ग्रहण किया था। ब्रह्मचर्य पर अपने बल के कारण उन्हें *वाहिदिया* भी कहा जाता था। एक ब्रह्मचारी *वाहिद* के दर्जे तक उठता था, इसलिए इन्हें वाहिदिया कहा जाता था
इशराक़ी परम्परा	इशराक़ी का अर्थ है, उदित होना या रोशन होना। इस्लामी दर्शन का इशराक़ी (रोशन) मत शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी द्वारा 12वीं शताब्दी में स्थापित मत एक सूफ़ी मत है

14.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें भाग 14.1
2) देखें भाग 14.1
3) देखें भाग 14.3

बोध प्रश्न-2

1) देखें भाग 14.4
2) देखें भाग 14.5
3) देखें भाग 14.6

बोध प्रश्न-3

1) देखें भाग 14.7
2) देखें भाग 14.8
3) देखें भाग 14.9

14.14 संदर्भ ग्रंथ

हबीब, इरफान, (1998) 'ए पॉलिटिकल थ्योरी फॉर द मुगल एम्पायर – ए स्टडी ऑफ अबुल फजल', *प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस*, भाग 59, पृ. 329-340.

मूसवी, शीरीन, (2000) 'मेकिंग एंड रिकॉर्डिंग हिस्ट्रीः अकबर एंड हिज़ *अकबरनामा*', *अकबर एंड हिज़ इंडिया* (संपा.) इरफान हबीब (नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

मुखिया, हरबंस, 'टाइम इन अबुल फ़ज़ल्स हिस्टॉरीआग्रफ़ी'; https://www.academia.edu / 12622851/

मुखिया, हरबंस, (2017 [1976]) *हिस्टॉरियंस एंड हिस्टॉरिआग्रफ़ी ड्यूरिंग द रेन ऑफ़ अकबर* (नई दिल्लीः आकार पब्लिकेशन).

मुखिया, हरबंस, (2020) 'ए रैशनैलिटी इमर्स्ड इन रिलिजियोसिटीः रीजन एंड रिलिजिओसिटी इन अबुल फ़ज़ल्स ओयूवरे', *द मिडीवल हिस्ट्री जर्नल*, 23:1, पृ. 50-73.

निज़ामी, के. ए., (1982) *ऑन हिस्ट्री एंड हिस्टॉरियंस ऑफ़ मिडीवल इंडिया* (नई दिल्लीः मुंशीराम मनोहरलाल प्रकाशक).

रिज़वी, एस. ए. ए., (1975) *रिलीजन एंड इंटेलेक्चुअल हिस्ट्री ऑफ़ मुस्लिम्स इन अकबर्स रेन विथ स्पेशल रेफरेन्स टू अबुल फ़ज़ल* (नई दिल्लीः मुंशीराम मनोहरलाल प्रकाशक).

शर्मा, एस.आर., (मार्च 1948) 'अबुल फज़ल ऐज़ ए पॉलिटिकल थिंकर', *द इंडियन जर्नल ऑफ़ पॉलिटिकल साइंस*, 9:1, पृ. 41-48.

सिद्दीक़ी, नोमान अहमद, (2018 (1982) 'शेख़ अबुल फ़ज़ल', मोहिबुल हसन, (संपा.) *हिस्टॉरीयंस ऑफ़ मिडीवल* इंडिया (नई दिल्लीः आकार बुक्स), पृ. 129-148.

14.15 शैक्षणिक वीडियो

मेकिंग सैंस ऑफ़ अबुल फज़ल एंड हिज़ नैरेटिव
https://www.youtube.com/watch?v=Zn3yZZGIzvM

मुग़ल हिस्ट्री एंड हिस्टोरियोग्राफ़ी
https://www.youtube.com/watch?v=XnCwjbeYtrA

अबुल फज़ल्स आईन-ए अकबरीः इंडियाज़ फर्स्ट गज़ेटियर
https://www.youtube.com/watch?v=K10BB6XSEsQ

अबुल फ़ज़लः क्रॉनिक्लिंग अकबर एंड हिज़ इंडिया
https://www.youtube.com/watch?v=yJ4iRSqg48M

हरबंस मुखिया इन किताब
https://www.youtube.com/watch?v=LRpHubqTPtY&t=1653s

ignou

THE PEOPLE'S

UNIVERSITY